जीवन क्रांति की दिशा

अनुक्रम

1. जीवन के प्रति अहोभाव..2
2. जीवन में रहस्य-भाव..15
3. जीवन में जागरूकता...27
4. मैं कौन हूं?...44

जीवन क्रांति की दिशा
पहला प्रवचन

जीवन के प्रति अहोभाव

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं एक नये बनते हुए मंदिर के पास से निकलता था। मंदिर की दीवालें बन
गई थीं। शिखर निर्मित हो रहा था। मंदिर की मूर्ति भी निर्मित हो रही थी। सैकड़ों मजदूर पत्थर तोड़ने में लगे थे। मैंने पत्थर तोड़ते एक मजदूर से पूछाः मित्र क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने बहुत गुस्से से मुझे देखा और कहाः क्या आपके पास आंखें नहीं हैं? क्या आपको दिखाई नहीं पड़ता? मैं पत्थर तोड़ रहा हूं। कोई क्रोध होगा उसके मन में, कोई निराशा होगी। और पत्थर तोड़ना कोई आनंद का काम भी नहीं हो सकता है।
मैं उस मजदूर को छोड़ कर आगे बढ़ गया और दूसरे मजदूर से पूछा। वह भी पत्थर तोड़ रहा था। मित्र क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने क्रोध से तो नहीं लेकिन अत्यंत उदासी से मेरी तरफ देखा और कहाः आजीविका कमा रहा हूं, बच्चों के लिए रोटी कमा रहा हूं। क्या आपको दिखाई नहीं पड़ता? वह भी पत्थर तोड़ रहा था। लेकिन उसने कहा, बच्चों के लिए रोटी कमा रहा हूं।
निश्चित ही केवल रोटी कमाना भी कोई बहुत आनंद की बात नहीं हो सकती है।
वह उदास था और दुखी था, लेकिन फिर भी पत्थर तोड़ने वाले से भिन्न थी उसकी दशा। वह क्रोधित नहीं था।
मैं और आगे बढ़ा और एक तीसरे पत्थर तोड़ने वाले आदमी से मैंने पूछाः मित्र क्या कर रहे हो? वह कोई गीत गुनगुनाता था। उसने आंखें ऊपर उठाईं। उसकी आंखों में किसी आनंद की झलक थी। उसने कहाः देखते नहीं हैं आप, भगवान का मंदिर बना रहा हूं? वह भी पत्थर तोड़ रहा था।
वे तीनों ही पत्थर तोड़ रहे थे--एक क्रोध से भरा था, एक उदासी से, एक आनंद से। वे तीनों एक ही काम कर रहे थे। लेकिन जो आदमी पत्थर तोड़ रहा था, वह क्रोध से भरेगा ही; क्योंकि जीवन पत्थर तोड़ने के लिए नहीं है। और जिनका जीवन पत्थर तोड़ने में ही नष्ट हो जाता है, वे यदि क्रोधित हो उठते हों, तो आश्चर्य नहीं। दूसरा व्यक्ति क्रोधित तो नहीं था, लेकिन उदास था। क्योंकि जिंदगी रोटी कमाने में ही व्यतीत हो जाए, तो उदासी के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आ सकता। और वे लोग अभागे हैं, जो रोटी कमाने में ही जीवन को नष्ट कर देते हैं। लेकिन तीसरा व्यक्ति भगवान का मंदिर बना रहा था। वह भी पत्थर तोड़ रहा था। लेकिन भगवान का मंदिर बनाना एक आनंद है। और धन्य हैं वे लोग जो जीवन में भगवान के मंदिर को बनाने में समर्थ हो पाते हैं। इन तीन दिनों में हम भगवान के मंदिर बनाने वाले कैसे बन सकते हैं, इस संबंध में ही थोड़ी बातें मैं आपसे करूंगा।
आज की इस पहली चर्चा में यह बड़े दुख से मुझे कहना पड़ता है कि पृथ्वी पर अधिकतम लोग या तो पत्थर तोड़ते हैं या ज्यादा से ज्यादा रोटी कमाते हैं। मुश्किल से कोई सौभाग्यशाली कभी भगवान के मंदिर के बनाने में संलग्न हो पाता है। इसीलिए तो इतना दुख है, इतनी उदासी है, इतना क्रोध है, इतना फ्रस्ट्रेशन, इतना विषाद है।
लेकिन मनुष्य क्यों जीवन को भगवान का मंदिर नहीं बना पाता है? क्या कारण है कि जीवन एक आनंद नहीं हो पाता? क्या कारण है, जीवन एक नृत्य नहीं बन पाता? क्या कारण है, जीवन की वीणा पर संगीत पैदा नहीं होता है? जीवन एक दुख भरी रात क्यों हो? जीवन एक प्रकाश से भरा हुआ दिवस क्यों नहीं? जीवन कांटों का मार्ग ही क्यों हो? फूलों की बगिया से गुजर जाना क्यों नहीं हो? जीवन दुख और आंसू ही क्यों हो? एक आनंद और एक मुस्कुराहट क्यों नहीं? कोई बुनियादी कारण होगा! और उस कारण पर शायद एक व्यक्ति का सवाल नहीं है, पूरी मनुष्य-जाति का सवाल है। किसी एक व्यक्ति की भूल नहीं। जैसे पूरी मनुष्य-जाति किसी बुनियादी भूल को कर रही है। उस पहली भूल पर ही आज मुझे बात करनी है।
वह पहली भूल यह है--आज तक मनुष्य के इतिहास में, मनुष्य के अगुवा और नेता होने वाले लोग बीमार और रुग्ण रहे हैं। मनुष्य-जाति को अब तक स्वस्थ

मस्तिष्क का नेतृत्व नहीं मिल सका है। मनुष्य को उन लोगों ने नेतृत्व दिया है जो अपने भीतर दुखी, रुग्ण, अस्वस्थ और विक्षिप्त थे। स्वस्थ व्यक्तित्व का नेतृत्व मनुष्य-जाति को नहीं उपलब्ध हो सका है। रुग्ण लोगों ने सारे जीवन के कुओं को विषाक्त कर दिया है। वे खुद जीवन में जिस आनंद को नहीं पा सके, अपनी असमर्थता को उन्होंने जीवन की ही भूल समझानी शुरू कर दी।
उस लोमड़ी की कथा हम सबने पढ़ी है, जो अंगूर के गुच्छों को तोड़ने में संलग्न थी। बहुत उछली और कूदी, उसने पूरी शक्ति लगाई लेकिन अंगूर के गुच्छों तक नहीं पहुंच सकी। फिर वह बहुत गरिमा और गौरव से, बहुत डिग्निटी से वापस लौट गई और राह पर जो लोग मिले उनसे उसने कहा, मुझे क्या पता था कि अंगूर खट्टे हैं। मैंने तो सोचा था अंगूर पक गए हैं, लेकिन निकट जाकर पता चला कि अंगूर खट्टे हैं। उन्हें तोड़ने में कोई सार नहीं है।
मनुष्य-जाति को भी ऐसे लोगों ने नेतृत्व दिया है जिन्हें जीवन के अंगूर उपलब्ध नहीं हो सके और उन्होंने कहाः सारा जीवन खट्टा है, असार है, व्यर्थ है। हमें क्या मालूम था कि जीवन इतना खट्टा है, अन्यथा हम तोड़ने ही नहीं जाते। सचाई दूसरी थी। जीवन के फल भरे रस वे उपलब्ध नहीं कर सके। लेकिन इस बात को स्वीकार करना कि जीवन के फल मुझे उपलब्ध नहीं हो सके हैं, अहंकार को बड़ी चोट लगती है। इसीलिए दूसरा उपाय आसान है कि जीवन असार है और व्यर्थ है। आज तक मनुष्य के मन को जीवन की असारता की शिक्षा ने ही विषाक्त किया है। और जमीन पर बहुत बड़े विष फैलाने वाले लोग पैदा हुए हैं। जीवन के सारे कुओं में जहर घोल दिया गया है। यही समझाया जाता रहा है आज तक--जीवन व्यर्थ है, जीवन दुख है। और जीवन में करने जैसी एक ही चीज है और वह है जीवन से छूट जाना। आवागमन से मुक्ति, मोक्ष।
झूठी हैं ये बातें और अंगूर खट्टे होने से ज्यादा इनका कोई अर्थ नहीं है। जीवन को छोड़ देने की बातें, जीवन को व्यर्थ कहने की बातें, जीवन को बुरा बताने की बातें, मनुष्य के मन में गहरे बैठा दी गई हैं। और ऐसा चित्त जो प्रारंभ से ही जीवन को दुख मान लेता हो, अगर जीवन में आनंद न पा सके, तो जिम्मेवार कौन है? हम सब जीवन में दुख से भरे हुए हैं। यह जीवन का दुख नहीं है। यह जीवन को देखने का हमारा गलत दृष्टिकोण है, जिसने जीवन को दुख से भर दिया है। जीवन बुरा नहीं है, हमारे मन विषाक्तहैं, हमारे मन रुग्ण हैं। जीवन में कांटे ही कांटे नहीं हैं, और न जीवन ऐसा है कि उसे छोड़ देना ही, उससे मुक्त हो जाना ही, उससे भाग जाना ही एक मात्र लक्ष्य हो।
नहीं, यह भगाने वाले लोगों ने सारी मनुष्य-जाति के मन को अंधकारपूर्ण
कर दिया है। ये ही लोग जिन्होंने आदमी के जीवन की निंदा की है, जीवन अनुभव करने की क्षमता को, पात्रता को, कम करने वाले लोग भी हैं। लेकिन इनकी शिक्षाओं का प्रभाव रहा है। जीवन-विरोधी शिक्षाओं के प्रभाव ने ही मनुष्य की यह विकृत दशा पैदा कर दी है।
एक चर्च में एक सुबह उस चर्च के धर्मगुरु ने अपने सुनने वाले लोगों से कहा, हो सकता है आप भी वहां मौजूद रहे हों, शायद आपने यह बात सुनी भी हो। उस धर्मगुरु ने यह कहा कि मेरे मित्रो, तुममें से कितने लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं? जो स्वर्ग जाना चाहते हों वे अपने हाथ ऊपर उठा दें। धर्मगुरु ने सोचा था, सभी लोग हाथ ऊपर उठा देंगे। करीब-करीब सभी लोगों ने हाथ ऊपर उठाए थे। लेकिन सामने बैठा हुआ एक व्यक्ति हाथ नीचे ही किए रहा। एक को छोड़ कर सभी लोगों ने हाथ ऊपर उठा दिए थे। सभी स्वर्ग जाना चाहते थे। धर्मगुरु को बहुत आश्चर्य हुआ। क्या ऐसा भी कोई आदमी हो सकता है जो नरक जाना चाहता हो! फिर उसने कहा कि अब आप अपने हाथ नीचे कर लें। और अब मैं पूछता हूं कि जो लोग नरक जाना चाहते हों, वे अपने हाथ ऊपर उठाएं। एक भी आदमी ने हाथ नहीं उठाया। उस आदमी ने भी नहीं जिसने स्वर्ग जाने के लिए हाथ नहीं उठाया था। वह धर्मगुरु हैरान हुआ। उसने कहाः मेरे भाई, तुमने न तो स्वर्ग जाने के लिए हाथ उठाया, न नरक जाने के लिए, तुम कहां जाना चाहते हो? उस आदमी ने कहाः मैं यहीं रहना चाहता हूं, जीवन में। और मैं जीवन को ही स्वर्ग बनाना चाहता हूं। न मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं, न मैं नरक जाना चाहता हूं; क्योंकि जो स्वर्ग जाना चाहते हैं उन्होंने इस पृथ्वी को नरक बना दिया है। क्योंकि

उनकी आंखें आकाश के किसी काल्पनिक स्वर्ग में लगी हुई हैं। और वास्तविक पृथ्वी उपेक्षित पड़ी रह गई है।
जो लोग जीवन को छोड़ देना चाहते हैं, जीवन की किसी भूल के कारण नहीं, अपनी किसी रुग्णता, अपनी किसी बीमारी के कारण; जीवन को, जीवन के रस को, जीवन के आनंद को उपभोग न करने की क्षमता के कारण, वे लोग जीवन को नरक बनाने में सहयोगी हो जाते हैं।
तो उस आदमी ने कहाः जितने लोगों ने हाथ उठाए हैं स्वर्ग जाने के लिए,
ये ही लोग पृथ्वी को नरक बनाए हुए हैं। मैं न स्वर्ग जाना चाहता हूं, न नरक जाना चाहता हूं। मैं इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहता हूं।
आज तक मनुष्य को पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की शिक्षा नहीं दी गई, इसलिए पृथ्वी नरक बन गई। इसलिए हमारा जीवन नरक बन गया है।
और मैं आपसे यह निवेदन कर दूं, जो इस जीवन में स्वर्ग में नहीं हो सकते, उनके लिए कोई स्वर्ग, कहीं भी नहीं है और न हो सकता है। और जो लोग इस जीवन को स्वर्ग में परिवर्तित कर सकते हैं, उनके लिए इस जगत में, किसी लोक में कोई नरक नहीं है। वे जहां भी होंगे, जहां भी उनका जीवन होगा, वे स्वर्ग में होने की कला में निष्णात हो गए होंगे।
जीवन एक अवसर है। उसे जो स्वर्ग बना लेता है वह आने वाले जीवन के स्वर्गों की बुनियाद रख देता है, और इस जीवन को जो नरक बना देता है वह आने वाले नरकों का रास्ता शुरू कर देता है। यात्रा शुरू कर देता है। हमने पृथ्वी को नरक बनाया है। और किन लोगों ने नरक बनाया है? उन लोगों ने... शायद मेरी बात बहुत कठोर मालूम पड़े। लेकिन उन्हीं लोगों ने, और मजबूरी है, सत्य कहना ही पड़ेगा। उन्हीं लोगों ने, जिन लोगों ने पृथ्वी के विरोध में और जीवन के विरोध में शिक्षाएं दी हैं।
जीवन का निषेध और लाइफ निगेशन सिखाया गया है। यही समझाया गया है--बुरा
है जीवन, दुख है जीवन, पीड़ा है जीवन, बंधन है जीवन। पिछले जन्मों के, दुष्कर्मों का फल है जीवन। जब जीवन ऐसा हो तो फिर जीवन में आनंद का मंदिर कैसे बनाया जा सकता है? तब तो एक ही काम है हमारे हाथ में कि तोड़ दें इस मंदिर को हम, गिरा दें इसकी दीवालों को, आग लगा दें इसमें, और किसी काल्पनिक मोक्ष की तलाश करें, खोज करें।
यह मैं पहली बात आपसे कहना चाहता हूं जीवन क्रांति की दिशा में। जीवन
के सृजन में पहली बात है जीवन के प्रति अहोभाव। जीवन के प्रति धन्यता का बोध, जीवन के प्रति आनंद की धारणा, जीवन के सौंदर्य और जीवन के रस के प्रति अनुग्रह, ग्रेटिट्यूड। जीवन के शत्रु जो हैं, उन्हें जीवन से कुछ भी नहीं मिलेगा। शत्रुता से कभी किसी को कुछ भी नहीं मिला है।
जीवन के मित्र जो हैं, जीवन अपनी निधियों के द्वार केवल उनके लिए ही खोलता है जो प्रेम से जीवन के द्वार पर दस्तक देते हैं, जो प्रेम से जीवन को आलिंगन करने के लिए तत्पर होते हैं, जो प्रेम से जीवन के द्वार पर प्रार्थना करते हैं, जो प्रेम से जीवन को पुकारते हैं और बुलाते हैं। और जिनके हृदय में जीवन के विरोध में कोई कांटा नहीं होता है, जीवन के स्वागत के लिए फूलों की मालाएं होती हैं, केवल उनके लिए ही जीवन एक मंदिर बन पाता है। अन्यथा फिर जीवन एक पत्थर तोड़ने से ज्यादा नहीं हो सकता है। जीवन का निषेध घातक सिद्ध हुआ है, पाय.जनस सिद्ध हुआ है। लेकिन धर्मों के नाम पर जीवन का निषेध ही प्रचलित रहा है। हम उसी आदमी को धार्मिक कहते हैं जो जीवन को जितना तोड़ दे और जीवन से जितना दूर भाग जाए, जो जीवन का जितना शत्रु हो, जीवन का जितना कंडेमनेशन, जितनी निंदा कर सके, जीवन को जितना कुत्सित, जीवन को जितना बुरा सिद्ध कर सके, जीवन को जितनी गालियां दे सके, वह आदमी उतना ही बड़ा धार्मिक प्रतीत होता है।
यही लोग हैं अधार्मिक। यही लोग हैं जिन्होंने जीवन को धार्मिक होने
से वंचित रखा है। लेकिन इनका प्रभाव रहा है जीवन पर। और आज तक मनुष्य-जाति इनकी ही अंधेरी छाया के नीचे बढ़ती रही है। और जिन्हें हमने मार्ग-दर्शक समझा है, वे ही मार्ग को भ्रष्ट करने वाले लोग हैं। इनकी तरकीब क्या रही है? इन्होंने किस भांति जीवन को बुरा और निंदित कर दिया? इन्होंने जीवन को किस भांति विकारग्रस्त सिद्ध कर दिया? इन्होंने किस भांति मनुष्य के मन

में जीवन और आवागमन से छूटने का भाव पैदा कर दिया? इनकी तरकीब क्या है? इनका टेक्नीक क्या है? इन्होंने किस विधि का उपयोग किया है, जिससे जीवन के सब कुएं विषाक्त हो गए?
बड़ी, बड़ी अदभुत तरकीब है। शायद आपको ख्याल में भी न आई हो। इनकी तरकीब
है एनालिसिस, इनकी तरकीब है विश्लेषण। इसे समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि हम इसे समझ लें, तो जीवन कैसे नष्ट किया गया है, वह हमारी समझ में आ जाएगा। मैं एक जलप्रपात देखने गया था। एक वाटरफॉल देखने गया था। एक बड़ी सुंदर रमणीक पहाड़ी से नदी गिरती थी। उसकी मर्मर ध्वनि, उसके पास खड़े हुए वृक्षों का आनंद, उस नदी की तीव्रता और वेग, सब अदभुत था और प्राणों के किसी बहुत अनजाने तलों को छू लेता था। अपने एक मित्र के साथ मैं उस जगह को देखने गया था। हम दोनों गाड़ी से उतर कर पहाड़ियों में प्रवेश करने लगे, तो मैंने अपने मित्र को कहा कि आप अपनी गाड़ी के ड्राइवर को भी बुला लें, वह भी देख लेगा। मैंने उस ड्राइवर को कहा कि तुम भी आ जाओ। उसने कहाः वहां क्या रखा हुआ है? पहाड़ और पानी! और कुछ भी नहीं। वहां है क्या? वहां है क्या पहाड़ और पानी के सिवाय? और मुझे हैरानी होती है, लोग सैकड़ों मील से चल कर देखने क्या आते हैं वहां। कुछ पत्थर पड़े हैं साहब। कुछ पानी गिरता है। और कुछ भी नहीं है।
मैंने अपने मित्र को कहा कि तुम्हारा ड्राइवर कोई धर्मगुरु होने के योग्य है। उसे विश्लेषण की, उसे एनालिसिस की कला का पता है। उसने जलप्रपात के उस सौंदर्य को दो छोटी सी चीजों में तोड़ कर स्पष्ट कर दिया है। पत्थर पड़े हैं वहां और पानी है वहां। और क्या है? बात खत्म हो गई, कुछ भी नहीं है वहां।
एक बहुत बड़े चित्रकार पिकासो के पास एक अमरीकी करोड़पति ने अपना एक चित्र बनवाया था। बहुत बड़ा धनपति था वह। उसने उचित न समझा कि पिकासो से पैसे ठहरा ले पहले से कि कितने पैसे लोगे। सोचा था कितने भी लेगा तो कितने लेगा। दो बरस लग गए चित्र बनने में। बार-बार उसने पुछवाया। पिकासो ने कहा कि देर है। फिर दो बरस बाद उसने कहा कि चित्र बन गया है। आप ले जाएं।
वह करोड़पति चित्र लेने गया। चित्र लेकर उसने कहाः कितने रुपये हुए इसके? पिकासो ने कहाः पचास हजार डालर। समझा उस करोड़पति ने मजाक की जा रही है। उसने कहाः पागल तो नहीं हैं आप? मजाक करते हैं? डरवाना चाहते हैं? इस छोटे से चित्र के पचास हजार डालर? छोटा सा कैनवस का टुकड़ा और थोड़े से रंग, दस-पांच रुपये की चीज है। है क्या इसमें? थोड़े से रंग हैं और थोड़ा सा कैनवस का टुकड़ा है, है क्या इसमें? पिकासो ने कहाः चित्र वापस रख दें। मैं एक कैनवस का टुकड़ा और थोड़े से रंग आपको दिए देता हूं। और उसने अपने सहयोगी को कहा कि जाओ और इससे भी बड़ा कैनवास का टुकड़ा ले आओ। और रंग की साबित डिबियां ले आओ और भेंट कर दो इनको। और फिर जो भी दाम आपको देना हो दे दें। उस करोड़पति ने कहाः लेकिन कैनवस को, रंग को लेकर मैं क्या करूंगा? पिकासो ने कहाः फिर भूल करते हैं आप। यह चित्र है, कैनवस और रंग नहीं। कैनवस और रंग से कोई और चीज प्रकट हुई है। लेकिन कोई चाहे तो कह सकता है, सुंदर चित्र में क्या है? थोड़े से रंग हैं और क्या है? यह विश्लेषण, जीवन की सब चीजों में पूछता है, और क्या है?
एक सुंदर चेहरे पर धर्मगुरु पूछता है--है क्या इसमें हड्डियां और मांस के सिवाय? आदमी के शरीर में क्या है? पीब है, मज्जा है, खून है, हड्डियां हैं और क्या है?
यह एनालिसिस, और है क्या? एक फूल में क्या है? कुछ भी तो नहीं है। कुछ थोड़े से केमिकल्स, क्लोरोफिल। और है क्या? एक फूल के सौंदर्य की तारीफ करें, धर्मगुरु कहेगा, है क्या इसमें? थोड़े से रंग हैं, थोड़े से रसायन हैं, और है क्या? एक कविता को धर्मगुरु के सामने रखें, एक काव्य को। वह कहेगा, है क्या? कुछ शब्दों का जोड़, और कुछ भी नहीं। अगर जीवन को हम इस भांति देखना शुरू करें तो जीवन असार हो जाएगा। पाया जाएगा, जीवन में कुछ भी नहीं है।
तीन हजार वर्षों से एनालिसिस ने, विश्लेषण ने, आदमी को बड़े धोखे में, बहुत इल्युजन में डाला है। हर चीज को तोड़ कर देखा जा सकता है, और कुछ भी

नहीं पाया जाएगा। एक जिंदा आदमी को हम काट डालें और खोजें क्या है इसमें, तो हड्डियां मिलेंगी, मांस मिलेगा, आदमी कहीं भी नहीं मिलेगा। एक चित्र को काट-पीट डालें, एक मूर्ति को तोड़ डालें, तो पत्थर के टुकड़े मिलेंगे। कोई सौंदर्य की प्रतिमा नहीं खोजे से मिलेगी। एक कविता को तोड़ डालें, तो शब्द मिलेंगे, कोई काव्य नहीं, कोई पोएट्री नहीं मिलेगी। एक सुंदर चेहरे को काट-पीट डालें तो क्या मिलेगा भीतर? यह चीजों को खंड-खंड टुकड़ों में तोड़ने की कला ने सारे जीवन को असार सिद्ध करने की तरकीब धर्मगुरुओं के हाथ में दे दी थी। किसी भी चीज को तोड़-फोड़ डालो, और पूछो क्या है इसमें? प्रेम में क्या है? सौंदर्य में क्या है? स्वाद में क्या है? रस में क्या है? किसी भी चीज में कुछ नहीं है, अगर विश्लेषण किया जाए। बात असल यह है कि विश्लेषण में केवल क्षुद्र हाथ लगता है। जो सूक्ष्म है, वह विलीन हो जाता है। उसका कोई दर्शन नहीं हो पाता। विश्लेषण करने में, एनालिसिस करने में, जो व्यर्थ है वह हाथ लगता है, जो सार्थक था वह तिरोहित हो जाता है। और तब हम कह सकते हैं--कोई सार नहीं! जीवन क्या है? जन्मना, रोटी कमाना, बच्चे पैदा करना और फिर मर जाना। और जीवन क्या है? विश्लेषण पूरा हो गया और जीवन में कुछ भी हाथ नहीं लगा--तो जीवन है असार।
फिर यही तरकीब धर्मगुरुओं की वैज्ञानिकों के हाथ में लग गई। क्योंकि तीन हजार वर्षों में धर्मगुरुओं ने विश्लेषण में, एनालिसिस में, आदमी को दीक्षित कर दिया। फिर विज्ञान का जन्म हुआ, तो उसके हाथ में एनालिसिस की तरकीब लग गई। उसने कहाः कहां है आत्मा आदमी में? हम तो काट-पीट कर देखते हैं, कहीं मिलती नहीं! आत्मा नहीं है। धर्मगुरुओं ने कहा था, संसार असार है। वैज्ञानिकों ने कहा, आत्मा भी असार है। क्योंकि उसका भी विश्लेषण करते हैं तो पाई नहीं जाती। खोज-बीन करते हैं, चीजें तोड़ते हैं, कुछ भी नहीं मिलता। धर्मगुरुओं को पता नहीं था कि जिस तोड़ने की तरकीब से वे जीवन को असार कह रहे हैं, उसी तोड़ने की तरकीब से एक दिन धर्म भी असार हो जाएगा। कोई आत्मा नहीं है, क्योंकि तोड़ने से उसका कोई पता नहीं चलता है।
एक संगीतज्ञ था। उसने अपनी वीणा पर एक गीत गाया। बहुत सुंदर था। एक वैज्ञानिक भी वहां बैठा सुनता था। उसने सोचा, जरूर वीणा में कोई बात होनी चाहिए। रात जब संगीतज्ञ सो गया, वह वैज्ञानिक उसके घर में घुस गया। उसने पूरी वीणा तोड़ कर देख डाली, तार-तार कर डाली, टुकड़े-टुकड़े कर डाली। हाथ में कुछ तार लगे, कुछ टुकड़े लगे लकड़ी के, कोई संगीत पकड़ में नहीं आया। उसने कहाः सब असार है। मालूम होता है धोखा था संगीत। संगीत था नहीं, मुझे धोखा दिया गया है। वीणा को पूरा खोज लेता हूं, कहीं कोई संगीत मिलता नहीं। जीवन का सत्य, एनालिसिस से उपलब्ध नहीं होता। जीवन का सत्य सिंथेसिस
से उपलब्ध होता है। जीवन का सत्य विश्लेषण से नहीं मिलता है, संश्लेषण से मिलता है। जीवन उसके खंड-खंड टुकड़ों में नहीं, उसकी होलनेस में, उसकी परिपूर्णता में है। सौंदर्य भी परिपूर्णता में है--सत्य भी, जीवन भी, आनंद भी। जो लोग खंडों में तोड़ते हैं, वे वंचित रह जाते हैं।
लेकिन उस वंचित रह जाने को वे जीवन पर थोप देते हैं, कि जीवन में कुछ
भी नहीं है। और जब जीवन में कुछ भी नहीं, तो छोड़ो इस जीवन को, भागो इस जीवन से, त्यागो इस जीवन को। फिर खोजो किसी परमात्मा को, खोजो किसी मोक्ष को, जहां सब कुछ होगा।
लेकिन अगर ये विश्लेषण करने वाले लोग किसी दिन मोक्ष पहुंच गए--जैसा
कि कभी हुआ नहीं आज तक कि वे पहुंच गए हों, लेकिन अगर किसी दिन मोक्ष पहुंच गए--तो वे पाएंगे कि मोक्ष भी असार है--वहां भी कुछ नहीं है। क्योंकि मोक्ष में वे क्या पाएंगे? जो भी मिलेगा उनकी एनालिसिस सिद्ध कर देगी यहां भी कुछ नहीं है।
बर्ट्रेंड रसल ने एक बार यह कहा कि मैं सोचता हूं कि कहीं मुझे मोक्ष मिल गया, तो मोक्ष कैसा होगा? वहां न कोई दुख होगा, न सुख, न वहां शांति होगी, न अशांति। वहां न अंधकार होगा, न प्रकाश। वहां न प्रेम होगा, न घृणा। वहां होगा क्या?
और मोक्ष से लौटने का कोई उपाय नहीं है। मोक्ष में एंट्रेंस होता है, एक्झिट नहीं होती। वहां भीतर जा सकते हैं, बाहर आने का कोई मौका नहीं है।

तो बर्ट्रेंड रसल ने कहा कि वहां करेंगे क्या? वहां जो लोग पहुंच गए हैं अब तक बहुत घबड़ा गए होंगे। बहुत बोर्डम पैदा हो गई होगी। वहां करेंगे क्या? वहां कोई अभाव नहीं, कोई दुख नहीं, कोई पीड़ा नहीं। वहां कोई कामना नहीं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं। वहां लोग हैं, और हैं, और बने रहेंगे अनंत तक, बने रहेंगे अनंत तक।
नहीं, बर्ट्रेंड रसल ने कहाः मेरी तबीयत बहुत घबड़ाती है। ऐसे मोक्ष
से तो नरक ही बेहतर। वहां कुछ करने को तो होगा। यह मोक्ष का विश्लेषण हो गया। रसल ने मोक्ष का विश्लेषण कर लिया। नहीं कुछ वहां भी दिखाई पड़ता। महावीर, बुद्ध धोखे में पड़ गए मालूम होते हैं। शायद वे मोक्ष का विश्लेषण नहीं कर पाए। रसल ने मोक्ष का विश्लेषण किया तो पाया कि वहां भी कुछ नहीं हो सकता है। मनुष्य विश्लेषण की छाया में भटका है आज तक। यह मैं पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूं--अगर जीवन को एक मंदिर बनाना है, तो जीवन को संश्लेषण की दृष्टि, सिंथेटिक एटिट्यूड से देखने की क्षमता पैदा करनी होगी विश्लेषण की दृष्टि से नहीं। जब भी हम चीजों को तोड़ देते हैं तो स्मरण रहे, चीजें होती हैं अपनी पूर्णता में, और कोई भी चीज अपने खंडों का जोड़ नहीं होती केवल। खंडों के जोड़ से ज्यादा होती है।
एक कविता शब्दों का जोड़ ही नहीं होती, शब्दों के जोड़ से कुछ ज्यादा होती है। एक चित्र रंगों का जोड़ ही नहीं होता है, रंगों के जोड़ से कुछ ज्यादा होता है। एक संगीत केवल वीणा और वीणावादक की अंगुलियां नहीं होतीं, कुछ और भी ज्यादा होता है। और वह जो ज्यादा है, वही रहस्यपूर्ण, वही अदृश्य, वही न दिखाई पड़ने वाला जीवन का रस है, जीवन का आनंद है, जीवन में प्रभु है। जीवन जोड़ से कुछ ज्यादा है।
गणित में जोड़ होते हैं दो और दो चार होते हैं। जीवन में दो और दो चार नहीं होते। दो और दो के बाद चार तो हो जाते हैं। और एक नई चीज पैदा हो जाती है, जो दो और दो में होती ही नहीं--जो उनके मिलन में होती है।
अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं, और उसे अपने हृदय से लगा लूं। और एक वैज्ञानिक विश्लेषण करे कि दो आदमियों की छाती की हड्डियां जब मिलती हैं तो आनंद कैसे होता होगा? तो हड्डियों के मिलने से कैसा आनंद हो सकता है? कैसा प्रेम हो सकता है? हड्डियों के मिलने से हो सकता है कोई विद्युत घर्षण पैदा हो जाती हो। यह हो सकता है कि हड्डियों को एक-दूसरे से गर्मी मिल जाती हो, लेकिन आनंद का क्या संबंध है? प्रेम का क्या संबंध है? अगर वैज्ञानिक किसी आलिंगन का विश्लेषण करे तो पाएगा, यह बेवकूफी है, एब्सर्ड है बिल्कुल। इससे कुछ नहीं मिल सकता, इसमें कुछ हो नहीं सकता।
लेकिन जो प्रेम में हैं वे जानते हैं कि आलिंगन में हड्डियां होती ही नहीं, शरीर मौजूद ही नहीं रह जाता। जब कोई किसी प्रेम से किसी को अपने हृदय के निकट लेता है, तो शरीर मौजूद ही नहीं रह जाते, शरीर अनुपस्थित हो जाते हैं। कोई और चीज उपस्थित हो जाती है, जिसका शरीर से कोई वास्ता नहीं है। दिखाई पड़ते हैं कि दो शरीर निकट आए, लेकिन निकट कोई और चीज आती है जो दिखाई भी नहीं पड़ती। आत्मा निकट आती है। लेकिन शरीर के विश्लेषण में उस आत्मा को नहीं खोजा जा सकता। सो वह झूठ हो जाती है, अशुद्ध हो जाती है, असार हो जाती है।
धर्म ने यह काम किया पहले, कि सारे जीवन को असार करने के लिए हर चीज का विश्लेषण कर दिया। फिर वैज्ञानिकों के हाथ में विश्लेषण की ताकत आ गई। उन्होंने सब चीजों का विश्लेषण करके धर्म को भी असार कर दिया। और अब आदमी खड़ा रह गया है। उसके हाथ में कुछ नहीं बचा है। न प्रेम, न परमात्मा, न संसार, न मोक्ष। सब चीजों का विश्लेषण हो गया है। और आदमी खाली हाथ खड़ा हो गया है। यह आदमी अगर दुख से न भर जाए, यह आदमी अगर जीवन के प्रति उदासी से न भर जाए, अगर यह आदमी जीवन को अंत करने के लिए तत्पर न होने लगे, तो क्या करे?
धर्मगुरुओं के विश्लेषण ने एक-एक आदमी को आत्महत्या सिखाई है, सुसाइड सिखाया है। आत्महत्या दो तरह से हो सकती है--या तो एक आदमी होलसेल आत्महत्या कर ले, इकट्ठी, या दूसरा आदमी फुटकर-फुटकर आत्महत्या करे। एक आदमी सीधा जाए और पहाड़ से कूद जाए और मर जाए। एक आदमी छुरी मार ले, जहर पी

ले, या एक आदमी धीरे-धीरे मरे। पहले घर छोड़े, फिर वस्त्र छोड़े, फिर भोजन छोड़े, संन्यासी हो जाए।
धीरे-धीरे मरने के नाम को हम अब तक संन्यास कहते रहे हैं, ग्रेज्युअल सुसाइड को, धीरे-धीरे मरो। और जो आदमी इस मरने की प्रक्रिया में जितना आगे निकल जाए, जितना सूख जाए, जितना सूखे पत्तों की भांति हो जाए, जीवन की निंदा जिसे जीवन के हर रस को गंदा करने की तीव्रता से भर दे, उस आदमी को हम उतना ही आदर देते हैं। धर्म के तथाकथित झूठे प्रभावों में हमने जीवन को नहीं, मृत्यु को आदर दिया है। और जो समाज मृत्यु को आदर देता हो, उसके जीवन में आनंद कैसे हो सकता है? आत्मघात को हमने सम्मान दिया है। हमने अब तक केवल मृत्यु के देवताओं के मंदिरों में पूजा की है। हमने दीये जलाए हैं मृत्यु के सामने, जीवन के सामने नहीं।
धर्म के हाथों में, मैंने कहाः व्यक्तिगत आत्महत्या की सूझ मिली आदमी को, और विज्ञान के हाथों में सामूहिक आत्महत्या का उपाय मिल गया है। धर्म ने कहाः छोड़ो जीवन को! आवागमन से मुक्ति चाहिए। जीवन ठीक नहीं, शुभ नहीं, पाप है। यही एक मात्र पाप है, जीवित होना। मैं पिछले जन्मों के पापों के कारण जीवित हूं। आप भी पिछले जन्म के पापों के कारण जीवित हैं। जिस दिन पाप नहीं रह जाएंगे, जीवन की कोई जगह नहीं रह जाती, आप जीवित नहीं होंगे। आप जीवन में नहीं होंगे।
जो लोग पाप से मुक्त हो जाते हैं, वे जीवन से भी मुक्त हो जाते हैं। जीवन और पाप पर्यायवाची हैं, एक ही अर्थ रखते हैं। जीवित होने और पापी होने का एक ही मतलब है। क्योंकि जो पाप से मुक्त हो जाते हैं वे जीवन से भी मुक्त हो जाते हैं। तो जीवन है पाप। फिर क्या करें हम? जीवन से हटें? जीवन को छोड़ें? जीवन से मुक्त हों? आवागमन से बाहर जाने की कोशिश करें?
जीवन से हटने की सारी कोशिश मृत्यु में जाने की कोशिश ही हो सकती है,
और कोई विकल्प नहीं, और कोई आल्टरनेटिव नहीं है। या तो जीवन की परिपूर्णता है, या तो जीवन के रस और आनंद में प्रवेश है, और या फिर जीवन से पीठ फेर लेनी है, जीवन से भागना है, जीवन से हटना है।
जिसे हम संन्यास कहते हैं, वह मृत्यु की ओर मुख करने का नाम है, जीवन
की और पीठ फेर लेने का; मृत्यु की तरफ गति करने का नाम है। धर्मों ने व्यक्तिगत आत्मघात सिखाया। विज्ञान और आगे बढ़ गया। असल में विज्ञान हर चीज को सामूहिक बनाने का उपक्रम है।
एक व्यक्ति जिसका उपभोग कर सकता है, विज्ञान की कोशिश है कि सभी उसका उपभोग कर सकें। अकबर के महल में जितनी रोशनी होती थी, विज्ञान ने व्यवस्था कर दी कि उतनी रोशनी बंबई के झोपड़े में भी हो सके। अकबर जितने अच्छे भोजन करता था, विज्ञान कोशिश करता है हर आदमी उतने अच्छे भोजन कर सके। सम्राटों के पास जितने तीव्र वाहन थे, विज्ञान ने कोशिश की कि दरिद्रतम आदमी के पास उतने ही तीव्र वाहन हो जाएं। विज्ञान जीवन की घटनाओं को सामूहिक करने की कोशिश करता है। उसने मृत्यु को भी सामूहिक करने की व्यवस्था कर दी है। एक-एक आदमी क्यों आवागमन से मुक्त हो? सारी पृथ्वी एक ही साथ आवागमन से मुक्त क्यों न हो जाए? इसलिए हाइड्रोजन बम और एटमबम का इंतजाम किया। सभी को इकट्ठा मोक्ष क्यों न मिल जाए? सभी जीवन से छूट क्यों न जाएं? जब जीवन दुख है तो जीवन को बचाने की जरूरत क्या है? और जब जीवन पीड़ा है और उससे छूटना ही एकमात्र लक्ष्य है तो सभी सामूहिक रूप से क्यों न मोक्ष में प्रवेश पा जाएं? एक-एक आदमी कब तक मुक्त होता रहेगा? एक-एक आदमी को मोक्ष जाने में कितना समय लग जाएगा? इकट्ठा, टोटल, हम क्यों न मुक्त हो जाएं?
तो विज्ञान ने मृत्यु को भी सामूहिक, कलेक्टिव करने का उपाय कर दिया है। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। विश्लेषण मृत्यु पर ले ही जाता है। चाहे धार्मिक विश्लेषण हो, चाहे वैज्ञानिक विश्लेषण हो। एनालिसिस मौत पर ही ले जाती है, जीवन पर नहीं ले जाती। क्योंकि एनालिसिस का मतलब हैः तोड़ना। तोड़ना, खंड-खंड करना। जो चीज तोड़ी जाती है, मर जाती है। जिसे हम खंड-खंड करते हैं वह नष्ट हो जाती है। जीवन का अर्थ हैः जोड़ना। जोड़ना, अखंड करना। मृत्यु का अर्थ हैः तोड़ना।

आप मरते हैं तो होता क्या है? आपके भीतर जो चीज सिंथेटिक थी वह टूट जाती है अपने एलीमेंट्स में। आपके भीतर जो जीवन था, वह खंड-खंड में बंट जाता है। और क्या होता है? मृत्यु का और अर्थ क्या है? मृत्यु का अर्थ है, जो जुड़ा था वह बिखर गया। जो संयुक्त था, वह वियुक्त हो गया। जो साथ-साथ था, वह अलग-अलग हो गया।
जीवन की प्रक्रिया है अखंडता में, इंटीग्रेशन में, सिंथेसिस में। और मृत्यु की प्रक्रिया है खंड-खंड होने में, विश्लिष्ट होने में, टूट जाने में। जो भी विश्लेषण का मार्ग पकड़ेगा--चाहे धर्म, चाहे विज्ञान--अंत में मृत्यु हाथ में आएगी। धार्मिकों ने भी एक तरह की मृत्यु हाथ में ला दी थी, विज्ञान ने दूसरी तरह की मृत्यु हाथ में ला दी है। लेकिन जीवन अब तक हाथ में नहीं आ सका।
न तो जीवन का धर्म पैदा हुआ है और न जीवन का विज्ञान पैदा हुआ है। जोड़ने का, इकट्ठेपन का, समग्रता का, होलनेस का अब तक कोई भाव जीवन पर नहीं प्रकट हो सका। इसलिए हम दुख में जीते हैं, इसलिए हम पीड़ा में जीते हैं, इसलिए हम अंधकार में जीते हैं। इसलिए जीवन से हमारा कोई संपर्क नहीं हो पाता है। न हम आनंद को जान पाते हैं, न आलोक को। हम कुछ भी नहीं जान पाते हैं। हम बिना जाने जीते हैं, और बिना जाने मर जाते हैं।
पहली बात आपसे कहना चाहता हूं। जीवन के मंदिर बनाने वाले बनना, पत्थर तोड़ने वाले नहीं, रोटी-रोजी कमाने वाले नहीं। अपमान जनक है ये बातें, कि कोई आदमी सिर्फ रोटी-रोजी कमाता है या पत्थर तोड़ता है। उसे पता ही नहीं उस आनंद का, उस गीत का, जो परमात्मा के मंदिर को बनाने में उपलब्ध होता है। जो किसी क्रिएटिविटी में--जो किसी सृजन में उपलब्ध होता है, जो खुद के जीवन को रोज-रोज बनाने में उपलब्ध होता है, उसे पता ही नहीं उस ग्रेटर सिंथेसिस की तरह, उस बड़े समन्वय की तरह, जहां भीतर का जीवन और नये-नये जोड़ को उपलब्ध होता है। रोज नये शिखर छूता है, रोज नई ऊंचाइयां छूता है, उसे पता ही नहीं। भगवान कहीं बना-बनाया रेडीमेड नहीं बैठा है कि आप पहुंच गए और मुलाकात हो गई। भगवान क्रिएट करना होता है अपने भीतर! भगवान को जानना और पहुंचना निरंतर, सतत सृजन से गुजरने का नाम है, कॉस्टेंट क्रिएटिविटी से गुजरने का नाम है। जो अपने जीवन को नये-नये संयोगों में जोड़ता है, श्रेष्ठतर संयोगों में जोड़ता है, जोड़ता चला जाता है, जोड़ता चला जाता है, उस अल्टीमेट यूनिटी तक, जिसके आगे फिर कोई जोड़ नहीं रह जाता, कोई सिंथेसिस नहीं रह जाती उस दिन वह जानता है कि परमात्मा क्या है।
जैसे हम एक मंदिर बनाते हैं, नींव बहुत बड़ी भरनी पड़ती है। फिर हम ईंटें जोड़ते चले जाते हैं, फिर मंदिर ऊपर उठने लगता है और छोटा होने लगता है। शिखर पर पहुंच कर फिर बहुत ईंटें नहीं रह जाती, एक ही ईंट रह जाती है।
छोटा होता चला जाता है शिखर, फिर अकेली ईंट रह जाती है ऊपर, फिर आगे उठने का कोई उपाय नहीं रह जाता। वहीं शिखर आ जाता है।
जीवन के मंदिर में बड़ी विस्तृत भूमि होती है, बुनियाद में, आधार में। फिर जोड़ते चलते हैं हम। और छोटी इकाई, और छोटी इकाई पैदा होती चली जाती है।
जिस दिन जोड़ आखिरी हो जाता है, उस दिन जिसका अनुभव होता है, वही आत्मा है! मनुष्य के भीतर जो श्रेष्ठतम एकता पैदा होती है, जो महानतम यूनिटी पैदा होती है, जो बड़े से बड़ा समन्वय पैदा होता है, वही जीवन के देवता का अनुभव है। लेकिन हम तो जीवन को तोड़ते हैं।
हम तो एक मंदिर में जाकर कह सकते हैं क्या है यहां? कुछ ईंटें लगा दी हैं और जोड़ हो गया, और क्या है? मेरे कपड़े को हम कह सकते हैं कि क्या है इस कपड़े में। कुछ भी तो नहीं है, कुछ धागे आड़े और सीधे डाल दिए हैं, और कुछ तो नहीं है? कपड़ा सिर्फ धागा नहीं है, क्योंकि धागे से कोई शरीर नहीं ढक सकता। कपड़ा धागों से कुछ ज्यादा है, क्योंकि धागे जो नहीं करते, वह कपड़ा करता है। नहीं तो आदमी पागल था धागे से काम चला लेता। कपड़े की क्या जरूरत थी। कपड़ा धागों की कोई यूनिटी है, कोई सिंथेसिस है, कोई समन्वय है, कोई जोड़ है। और उस जोड़ में कुछ नई उपयोगिता पैदा हो जाती है। कोई नया अर्थ पैदा हो जाता है।
वह जो नया अर्थ है, उसकी तलाश, उसकी खोज ही धर्म है।

लेकिन निषेध के धर्म यह नहीं कर पाए। उन्होंने मनुष्य को मरना सिखाया है, जीना नहीं। और जो आदमी जितनी कुशलता से मर सकता है, उसको उतना सम्मान दिया। जो आदमी मरने में बड़ा अग्रणीय हो सकता है उसे शहीद कहा। यह शहीद है? लेकिन जो आदमी जीवन को जीता है कुशलता से, उसे आज तक कोई शहीद कहने वाला नहीं मिला। बदल देने चाहिए ये वैल्यूज, ये मूल्य बदल देने चाहिए। मरने वालों को शहीद कहने की क्या जरूरत है? लेकिन जो जीते हैं और जीवन को पूरे अर्थों में जीते हैं, वे ही शहीद हैं। मरना बहुत आसान है, जीना बहुत कठिन है। क्योंकि मरने में सिर्फ मरना पड़ता है, और कुछ भी नहीं करना पड़ता है। जीने में बहुत कुछ करना पड़ता है। तोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि सिर्फ तोड़ना पड़ता है। जोड़ना बहुत कठिन है, क्योंकि जोड़ने के लिए कला चाहिए। तोड़ने के लिए तो कोई भी तोड़ सकता है।
एक मंदिर गिराना हो तो हम किन्हीं बड़े आर्किटेक्ट को खोजने नहीं जाते। गांव के कोई भी मजदूर काम दे देंगे। लेकिन एक मंदिर बनाना हो, तो गांव के मजदूर काम नहीं देते। हमें किसी आर्किटेक्ट को खोजना पड़ता है जो बनाना जानता हो, बनाने की कला जानता हो, जो जोड़ने की कला जानता हो।
अब तक धर्म के नाम पर हमने केवल तोड़ना सिखाया है, छोड़ना सिखाया है, भागना सिखाया है। यह कोई भी कर सकता है। इसके लिए कोई जीवन की कला जाननी जरूरी नहीं है। लेकिन वह धर्म अब तक पैदा नहीं हो सका जो जोड़ना सिखाए। जीवन का आर्किटेक्ट, जीवन की कला सिखाए, जीवन को निर्माण करने के सूत्र सिखाए।
पहला सूत्रः आज की सांझ मुझे आपसे बात करनी है और वह यह है कि जीवन को विश्लेषण की दृष्टि से देखना बंद कर दें, अन्यथा आपके हाथ में राख के सिवाय कुछ भी नहीं लगेगा। जीवन को देखें संश्लेषण की दृष्टि से और आपके हाथ में रस उपलब्ध होना शुरू हो जाएगा। और सब कुछ निर्भर करता है कि आप कैसे देखते हैं। जीवन वही हो जाता है जो आपकी देखने की दृष्टि होती है। जापान से एक आदमी अफ्रीका के लिए यात्रा किया। उसी जहाज से एक अमरीकी
भी यात्रा कर रहा था। वे दोनों अफ्रीका पहुंचे। वे दोनों एक ही जहाज से पहुंचे। एक ही समय पहुंचे। एक ही काम से पहुंचे, यह उन्हें पता नहीं था। वह जो अमरीकी युवक था वह भी एक बहुत बड़ी जूतों की कंपनी का बेचने वाला एजेंट था, सेल्समैन था। वह भी अफ्रीका गया था कि अपनी कंपनी के जूते वहां बिकने की व्यवस्था कर सके और वह जापानी भी जापान की एक जूता बेचने वाली कंपनी का विक्रेता था। वह भी इसीलिए गया हुआ था।
वे दोनों एक ही जहाज से अफ्रीका में उतरे। रास्तों से गुजर कर वे अपने होटल तक पहुंचे। एक ही होटल में ठहरे। एक ही रास्ते से गुजरे। उन्हीं लोगों को दोनों ने देखा। अमरीकी ने जाकर वहां से अमेरिका केबल किया, मैं लौटते जहाज से वापस आ रहा हूं। अफ्रीका में जूते नहीं बिक सकेंगे, क्योंकि यहां कोई जूता पहनता ही नहीं है। सभी लोग नंगे पैर हैं। यहां हमारे लिए कोई सुविधा नहीं, यहां सब व्यर्थ है हमारा आना। मैं वापस लौट रहा हूं। जापानी ने भी उसी वक्त केबल किया जापान कि एक लाख जूते की जोड़ियां फौरन भेज दें, यहां बिक्री की बहुत संभावना है। कोई भी जूता नहीं पहने हुए है। एक भी आदमी के पास जूते नहीं हैं। बहुत बड़ा बाजार है। फौरन एक लाख जोड़ी तो भेज ही दें; क्योंकि एकदम से बिक्री शुरू हो जाएगी।
अमरीकी वापस लौट गया, क्योंकि कोई आदमी जहां जूता ही नहीं पहनता; वहां जूता कौन खरीदेगा? जहां जूते पहनने का रिवाज ही नहीं वहां जूते का सवाल ही क्या उठाना है?
इन दोनों की दृष्टियां भिन्न थीं। एक ने बाजार खोज लिया, एक ने बाजार
खो दिया।
जीवन के बाजार में हम सब उतरते हैं। कुछ लोग बाजार खो देते हैं, कुछ लोग बाजार को उपलब्ध कर लेते हैं। जो लोग विश्लेषण से देखते हैं, उन्हें जीवन असार दिखाई पड़ता है। वे फौरन केबल करते हैं परमात्मा को आवागमन से छुटकारा दिलाओ, हम वापस आना चाहते हैं, जीवन व्यर्थ है! यहां कोई सार नहीं। हे पतितपावन! हमें जल्दी वापस बुला लो। यहां हम नहीं रहना चाहते। लेकिन जो जीवन को संश्लेषण की दृष्टि से देखते हैं, वे परमात्मा से कहते हैं,

धन्यवाद है तुझे, कि जीवन में हमें भेजने का मौका तूने दिया और इस योग्य समझा। जीवन में बड़ा आनंद है, जीवन में बड़े मौके हैं, जीवन एक बड़ी ऑपरच्युनिटी, एक बड़ा अवसर है। अनुगृहीत हैं हम तेरे कि तूने हमें इस योग्य समझा कि इस जीवन में भेजा।
रवींद्रनाथ ने मरने के दो दिन पहले एक गीत लिखा। और उस गीत में कहा कि
हे परमात्मा! मैं किन शब्दों में तुझे धन्यवाद दूं, कि तूने मुझे जीने का मौका दिया। तेरा जीवन बहुत अदभुत था। और अगर कुछ दुख भी इस जीवन में मुझे मिले होंगे, तो वह मेरी भूल से मिले होंगे, तेरे जीवन के कारण नहीं।
फिर से दोहराता हूं, रवींद्रनाथ ने गाया कि अगर तेरे जीवन से कुछ दुख
भी मुझे मिले होंगे, तो वह मेरी भूल से मुझे मिले, तेरे जीवन के कारण नहीं। तेरा जीवन तो बहुत धन्य था। और मेरी एक ही प्रार्थना है कि अगर तूने मुझे इस जीवन में देख कर अपात्र न समझ लिया हो, तो बार-बार मुझे जीवन के दर्शन का मौका देना, मैं बार-बार लौट आना चाहता हूं। शायद अगली बार मैं आऊं तो मैं ज्यादा पात्र होकर आऊं। जो भूलें मैंने आज की वे कल न करूं। जीवन तूने दिया, धन्यवाद! और आगे भी जीवन देना इसकी प्रार्थना है।
इस हृदय को मैं धार्मिक हृदय कहता हूं। इस हृदय को मैं जानने वाला हृदय कहता हूं। इस हृदय ने जीवन के मंदिर को बनाया और जाना, ऐसा मैं कहता हूं। जीवन का निषेध नहीं, लाइफ निगेशन नहीं, जीवन का स्वीकार, लाइफ अफर्मेशन पहला सूत्र है जीवन की क्रांति की दिशा में। जो लोग अपने जीवन को बदलना चाहते हैं, पहले तो उन्हें जीवन से मित्रता साधनी होगी, शत्रुता नहीं। पहले तो उन्हें जीवन से आलिंगन लेना होगा, पीठ नहीं फेर लेनी होगी। पहले तो उन्हें जीवन के रस में विभोर होना होगा।
लेकिन हम तो जीवन को देखते ही नहीं। सूरज उगता है, आपने कभी उसे धन्यवाद दिया है? और चल पड़े परमात्मा की खोज में। और चल पड़े आनंद की खोज में। सुबह आंख खुलती है और जीवन आपके भीतर करवट लेता है; कभी आपने धन्यवाद दिया जीवन को कि एक दिन और मिला मुझे, अनुगृहीत हुआ मैं? कृतज्ञता ज्ञापन की कभी?
आकाश में चांद-तारे होते हैं। मुफ्त, बिना आपसे कुछ लिए रोज निकल आते हैं। फूल बिना कुछ आपसे मांगे रोज खिल जाते हैं। श्वास बिना किसी चीज के व्यय किए आपके भीतर आनंद की बहुत खबरें लाते हैं। लेकिन हम वे लोग हैं जो जीवन को देखते ही नहीं। न हवाओं में, न चांद-तारों में, न सूरज में, न आदमी की आंखों में, न बच्चों की आंखों में, न स्त्रियों की आंखों में, न बूढ़ों की आंखों में। हम तो जीवन को देखते ही नहीं। हम तो ऐसे जीते हैं जैसे एक बोझढोते हों। हम तो ऐसे जीते हैं जैसे एक सजा काटते हों।
मैं कारागृह में गया था एक बार। वहां मैंने लोगों से पूछा, कैसे जी रहे हो? उन्होंने कहाः जीने का कोई सवाल नहीं, हम केवल सजा काट रहे हैं। मैंने कहाः अगर तुम ही सजा काटते होते तो भी ठीक था, मैं बाहर की बड़ी जेल से आ रहा हूं, वहां भी लोग सजा ही काट रहे हैं। वहां भी कोई जी नहीं रहा है, क्योंकि जीने के प्राथमिक सूत्रों का ही कोई बोध नहीं।
पहला सूत्र हैः जीवन के प्रति अहोभाव, ग्रेटिट्यूड। जीवन के प्रति अनुग्रह का भाव। और जिस दिन आप अनुग्रह से देखेंगे, उसी दिन वे द्वार खुल जाएंगे जो बंद रहे हैं अब तक। और आप हैरान हो जाएंगे, यह भी मौजूद था जो मैंने कल तक देखा नहीं और मैं क्या देख रहा था?
दो कैदी एक कारागृह में बंद थे। वे दोनों कारागृह के सींखचे पकड़े हुए खड़े थे। सींखचों के सामने ही एक गंदा डबरा था, जिसमें तरह-तरह के कीड़े- मकोड़े पल रहे थे, और जिससे बेहद बदबू उठ रही थी। एक कैदी उस डबरे को देखे जा रहा था और गालियां दे रहा था कि कैद में रखा वह तो ठीक, लेकिन इस डबरे के पास? दूसरा कैदी भी उसके पास ही खड़ा था, उसकी आंखें आकाश की तरफ उठीं थीं, आकाश में पूर्णिमा का चांद निकल आया था और उससे अमृत की वर्षा हो रही थी, और उस कैदी ने अपने बगल के पड़ोसी को हिलाया और कहाः पागल, लेकिन चांद भी है, तू चांद को देखता ही नहीं? किसने कहा कि तू डबरे को देख? डबरा है, यह तो ठीक, लेकिन किसने कहा कि तू डबरे को देख? तू खुद ही चुनाव कर रहा है डबरे को देखने का, क्योंकि चांद भी मौजूद है। और पागल, जब मैंने चांद को देखा और

चांद को देख कर जब मेरी आंखें डबरे पर गईं तो मैं हैरान हो गया। वह डबरा भी बदल गया था, उस में चांद की प्रतिछाया बन रही थी। उस डबरे में भी मुझे चांद दिखाई पड़ा। क्योंकि चांद को मैंने देखा, चांद से मैं परिचित हुआ। फिर उस डबरे में मुझे कीड़े-मकोड़े ख्याल नहीं आए। चांद की प्रतिछवि ही मुझे दिखाई पड़ी और तू डबरे को देख रहा है? और मैं जानता हूं, अगर तू चांद को भी देखेगा तो डबरे की प्रतिछवि चांद में दिखाई पड़ेगी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। हमारी दृष्टि हमारे जगत को निर्मित करती है। धर्मगुरुओं ने मनुष्य के जगत को विषाक्त कर दिया असार दुखपूर्ण कह कर। और उन्होंने कहा और हो गया, उनका अभिशाप फलित हो गया।
क्या हम इस दुनिया को ऐसे ही जीते रहें या जीवन की दृष्टि को बदलें? परमात्मा अगर कहीं है, तो जीवन के मंदिर में विराजमान है। और जिन्हें भी उस मंदिर में प्रवेश करना है, वे अहोभाव, जीवन के प्रति धन्यता का बोध, जीवन के प्रति कृतज्ञता का बोध लेकर ही प्रवेश कर सकते हैं।
पहली सीढ़ी हैः जीवन के प्रति अहोभाव। और उस सीढ़ी तक पहुंचने की दृष्टि है--संश्लेषण, सिंथेसिस, होलनेस। एनालिसिस नहीं, विश्लेषण नहीं, खंड-खंड कर देना नहीं। अखंड को देखें, खंड-खंड को नहीं। जो अखंड को देखता है वह धार्मिक है, जो खंड-खंड को देखता है वह अधार्मिक है। यह जीवन क्रांति की दिशा में पहला सूत्र है।
एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
आने वाले दो दिनों में दो सूत्रों की और आपसे बात करूंगा।
बड़ी झूठी कहानी है। स्वर्ग में, स्वर्ग के एक रेस्तरां में बुद्ध, कनफ्यूशियस और लाओत्सु, तीनों बैठ कर गपशप कर रहे हैं। स्वर्ग में भी रेस्तरां होते हैं। क्योंकि जो आदमी जमीन से गया है वह जमीन की बहुत सी चीजें वहां ले जाता है। नहीं ले जाता तो वहां बना लेता है। फिर बुद्ध, कनफ्यूशियस और लाओत्सु तीनों ही पृथ्वी पर शायद ही किसी रेस्त्रां में गए हों। जो जमीन पर चूक गए, सोचा होगा स्वर्ग में पूरा कर लें। वे तीनों रेस्त्रां में बैठ कर गपशप करते हैं। एक अप्सरा एक बहुत सुंदर सुराही में जीवन का रस लेकर आती है। बुद्ध यह देखते ही कि जीवन का रस है आंख बंद कर लेते हैं और कहते हैं, बस। जीवन दुख और असार है, हटो यहां से, अन्यथा मैं यहां से हट जाऊंगा। लेकिन कनफ्यूशियस कहता है, थोड़ा सा चख कर देख लूं, कैसा है? क्योंकि बिना चखे कुछ भी कहना उचित नहीं। एक घूंट देख लूं कैसा है, क्योंकि बिना घूंट लिए कोई निर्णय देना उचित नहीं, योग्य नहीं। छोटी सी प्याली में एक घूंट जीवन का रस लेकर वह चखता है और कहता है, नहीं, कोई सार नहीं है, कोई सार नहीं है। वह भी आंख बंद कर लेता है। लाओत्सु कहता है कि पूरी सुराही मुझे दे दे। क्योंकि जब तक मैं पूरे को न चख लूं, कुछ भी कहना उचित नहीं। हो सकता है जो एक घूंट में न हो वह पूरे में हो। हो सकता है जो खंड में न हो अखंड में हो। तो मैं पूरे ही जीवन को पी जाऊं, फिर कुछ कहूं। वह पूरी प्याली पी जाता है और नाचने लगता है। और बुद्ध से कहता है, तुमने बिना चखे कहा कि कुछ भी नहीं है। और कनफ्यूशियस, तुमने एक घूंट पीया और कहा व्यर्थ है। लेकिन जीवन तो उसकी पूर्णता में ही जाना जा सकता है।
और मैं तुमसे कहता हूं, जो जीवन को नहीं जानता, वही कहता है, व्यर्थ है; वही कहता है, असार है। और मैं जीवन को जान कर कहता हूं, सारभूत जो कुछ है सब जीवन में है। परमात्मा जीवन में है और मोक्ष भी। लेकिन पूरे जीवन को जो जानते हैं वे ही केवल इस सत्य को अनुभव कर पाते हैं।
जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना ही प्रार्थना है, पूजा है। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना ही संन्यास है, साधुता है। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना ही मनुष्य का अंतिम और चरम लक्ष्य, अंतिम और चरम उद्देश्य है। धर्म उसका द्वार है, पहला सूत्र। दो सूत्रों की कल-परसों आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, और ऐसी बातों को जिनके विरोध में हमेशा साधु और संन्यासी बोलते रहे हैं। आपकी बड़ी कृपा है।
शांति और प्रेम से मेरी बातों को सुनने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

जो मैंने कहा वह शब्दों का जोड़ ही नहीं है, उसका विश्लेषण मत कर लेना, अन्यथा वह व्यर्थ हो जाएगा। जो मैंने कहा उसे पूरा का पूरा देखना। उसमें शब्दों से कुछ ज्यादा भी मैंने कहने की कोशिश की है, कोई इशारा किया है जो शब्दों के पार ले जाता है। काश वह दिखाई पड़ जाए तो परमात्मा का मंदिर दूर नहीं।

अंत में सबके भीतर बैठे हुए जीवन के देवता को मैं प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन क्रांति की दिशा
दूसरा प्रवचन

जीवन में रहस्य-भाव

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीवन ही परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं। जीवन को जीने की कला जो जान लेते हैं वे प्रभु के मंदिर के निकट पहुंच जाते हैं। और जो जीवन से भागते हैं वे जीवन से तो वंचित होते ही हैं, परमात्मा से भी वंचित हो जाते हैं। इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं। पहला सूत्र मैंने कल आपसे कहा हैः जीवन के प्रति अहोभाव, जीवन के प्रति आनंद और अनुग्रह की भावना।
लेकिन आज तक ठीक इससे उलटी बात समझाई गई है। आज तक यही समझाया गया है-- जीवन से पलायन, एस्केप, जीवन की तरफ पीठ फेर लेनी, जीवन से दूर हट जाना, जीवन से मुक्त होने की कामना। आज तक यही सिखाया गया है। और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसके कारण ही पृथ्वी एक नरक और दुख का स्थान बन गई है। जो पृथ्वी स्वर्ग बन सकती थी वह नरक बन गई है।
मैंने सुना है, एक संध्या स्वर्ग के द्वार पर किसी व्यक्ति ने जाकर दस्तक दी। पहरेदार ने पूछा, तुम कहां से आते हो? उसने कहाः मैं मंगल ग्रह से आ रहा हूं। पहरेदार ने कहाः तो अभी नरक जाओ। यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। स्वर्ग के दरवाजे तुम्हारे लिए नहीं हैं। अभी नरक जाओ। वह आदमी अभी गया भी न था, कि उसके पीछे एक और आदमी ने द्वार खटखटाया। पहरेदार ने फिर पूछा, तुम कौन हो और कहां से आते हो? उसने कहा, मैं एक मनुष्य हूं और पृथ्वी से आता हूं। द्वारपाल ने दरवाजे खोल दिए और कहा, तुम भीतर आ जाओ। यू हैव बीन थ्रू हेल ऑलरेडी। तुम नरक मे रह कर ही आ रहे हो। अब तुम्हें और किसी नरक जाने की कोई जरूरत नहीं है।
मनुष्य ने पृथ्वी की जो दुर्गति कर दी है, वह बड़ी आश्चर्यजनक और देखने जैसी है। हैरानी जैसी है। और बहुत भले लोगों ने इस दुर्गति में हाथ बंटाया है। उन सारे लोगों ने, जिन्होंने जीवन की निंदा की है और जीवन का कंडेमनेशन किया है, जिन्होंने जीवन को असार और बुरा कहा है, जिन्होंने जीवन के प्रति घृणा सिखाई है, उन सारे लोगों ने पृथ्वी को नरक बनाने में हाथ बंटाया है।
इस संबंध में कल मैंने आपसे कहा, यह दुर्भाव छोड़ना होगा। धार्मिक मनुष्य के मन में, जीवन के प्रति एक धन्यता का, एक ग्रेटिट्यूड का भाव लाना होगा। जीवन उसे असार नहीं दिखाई पड़ता। और अगर कहीं जीवन असार मालूम होता है, तो वह समझता है कि मेरी कोई भूल होगी जिससे जीवन गलत दिखाई पड़ रहा है। जब भी जीवन गलत दिखाई पड़ता है, तो धार्मिक आदमी अपने को गलत समझता है। लेकिन मनुष्य की पुरानी भूलों में से एक यह है कि अपनी भूल को दूसरे पर थोप देने की हमारी पुरानी प्रवृत्ति है। अपनी गलती को, अपने दोष को, अपनी व्यर्थता को, अपनी मीनिंगलेसनेस को हम जीवन पर थोप कर मुक्त हो जाते हैं। जीवन ही दुख है। हम क्या करें?
सच्चाई दूसरी है, हम जिस चित्त को लिए बैठे हैं, वह दुख का सृजन करने वाला चित्त है। हम जिस मन को लिए बैठे हैं, हम जिन वृत्तियों को लिए बैठे हैं, वे वृत्तियां दुख को पैदा करने वाली हैं। और दुख को जन्म देने वाली वृत्तियां हैं। पृथ्वी वैसी ही हो जाती है जैसे हम हैं। हम, हम हैं मौलिक रूप से केंद्रीय, पृथ्वी नहीं।
एक छोटे से गांव के बाहर एक सुबह ही सुबह एक बैलगाड़ी आकर रुकी थी। और
उस बैलगाड़ी में बैठे हुए आदमी ने उस गांव के द्वार पर बैठे हुए एक बूढ़े से पूछा, इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं इस गांव में हमेशा के लिए स्थायी निवास बनाना चाहता हूं। उस बूढ़े ने कहाः मेरे मित्र, अजनबी मित्र, इसके पहले कि मैं तुम्हें बताऊं कि इस गांव के लोग कैसे हैं, क्या मैं पूछ सकता हूं कि उस गांव के लोग कैसे थे, जिससे तुम आ रहे हो?
उस आदमी ने कहाः उनका नाम और उनका ख्याल ही मुझे क्रोध और घृणा से भर देता है। उन जैसे दुष्ट लोग इस पृथ्वी पर कहीं भी नहीं होंगे। उन शैतानों

के कारण ही, उन पापियों के कारण ही तो मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा है। मेरा हृदय जल रहा है। मैं उनके प्रति घृणा से और प्रतिशोध से भरा हुआ हूं। उनका नाम भी न लें। उस गांव की याद भी न दिलाएं।
उस बूढ़े ने कहाः फिर मैं क्षमा चाहता हूं। आप बैलगाड़ी आगे बढ़ा लें। इस गांव के लोग और भी बुरे हैं। मैं उन्हें बहुत वर्षों से जानता हूं।
वह बैलगाड़ी आगे बढ़ी भी नहीं थी कि एक घुड़सवार आकर रुक गया और उसने भी यही पूछा उस बूढ़े से कि इस गांव में निवास करना चाहता हूं। कैसे हैं इस गांव के लोग?
उस बूढ़े ने कहाः उस गांव के लोग कैसे थे जहां से तुम आते हो? उस घुड़सवार की आंखों में आनंद के आंसू आ गए। उसकी आंखें किसी दूसरे लोक में चली गईं। उसका हृदय किन्हीं की स्मृतियों से भर गया और उसने कहा, उनकी याद भी मुझे आनंद से भर देती है। कितने प्यारे लोग थे। और मैं दुखी हूं कि उन्हें छोड़ कर मुझे मजबूरियों में आना पड़ा है। लेकिन एक सपना मन में है कि कभी फिर उस गांव में वापस लौट कर बस जाऊं। वह गांव ही मेरी कब्र बने, यही मेरी कामना है। बहुत भले थे वे लोग। उनकी याद न दिलाना। उनकी याद से ही मेरा दिल टूटा जाता है। उस बूढ़े ने कहाः इधर आओ, हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। इस गांव के लोगों को तुम उस गांव के लोगों से भी अच्छा पाओगे। मैं इस गांव के लोगों को भलीभांति जानता हूं।
काश, वह पहला बैलगाड़ी वाला आदमी भी इस बात को सुन लेता। लेकिन वह जा चुका था।
लेकिन आपको मैं ये दोनों बातें बताए देता हूं। इसके पहले कि आपकी बैलगाड़ी पृथ्वी के द्वार से आगे बढ़ जाए, मैं आपको यह कह देना चाहता हूं कि इस पृथ्वी पर आप वैसे ही लोग पाएंगे जैसे आप हैं। इस पृथ्वी को आप आनंदपूर्ण पाएंगे, अगर आपके हृदय में आनंद की वीणा बजनी शुरू हो गई हो। और इस पृथ्वी को आप दुख से भरा हुआ पाएंगे, अगर आपके हृदय का दीया बुझा है और अंधकारपूर्ण है। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है पृथ्वी! जीवन वही है जो आप हैं।
जीवन को हम किस दृष्टि से देखते हैं? धार्मिक व्यक्ति जीवन से भागने वाला व्यक्ति नहीं है। भागने वाले होते होंगे कमजोर! भागने वाले होते होंगे सुस्त और आलसी! भागने वाले होते होंगे डरपोक, कावर्ड, जिन्हें जीवन का सामना करने का साहस और हिम्मत नहीं है!
धार्मिक व्यक्ति से ज्यादा साहसी तो कोई होता ही नहीं। उससे ज्यादा करेज तो किसी के भीतर होता नहीं। धार्मिक व्यक्ति भागता नहीं, स्वयं को बदलता है। और स्वयं की बदलाहट के साथ ही पाता है कि सारा जीवन बदल गया है। जिस दिन वह खुद को बदल लेता है, उसी दिन पाता है कि सारे जीवन की पूरी स्थिति बदल गई है, जीवन कुछ और हो गया है।
हमारी आंखों पर निर्भर है वह, जिसे हम देखते हैं। और हमारे प्राणों पर निर्भर है वह, जिसका हम अनुभव करते हैं। यह बात मैंने कल आपसे कही-- आनंदभाव, जीवन के प्रति अहोभाव, जीवन के प्रति अनुग्रह का बोध। यह धार्मिक व्यक्ति की पहली जीवन-क्रांति का सूत्र है। आज दूसरे सूत्र पर मुझे बात करनी है।
दूसरा सूत्र हैः जीवन के प्रति आश्चर्य का बोध! तीन हजार वर्षों में अगर मनुष्य ने कोई चीज खो दी है, तो आश्चर्य खो दिया है। आश्चर्य के साथ ही खो गया है धर्म! आश्चर्य के साथ ही खो गया है जीवन का रहस्य। आश्चर्य के साथ ही खो गया है वह सब जो मिस्टीरियस है, वह सब जो रहस्यपूर्ण है। आश्चर्य हमने कैसे खो दिया है? छोटे बच्चे तो आज भी आश्चर्य को लेकर पैदा होते हैं। लेकिन मां-बाप उनके आश्चर्य की गर्दन घोंट देते हैं। छोटे बच्चे तो आज भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे पहले होते थे। लेकिन उनके आश्चर्य को हम उनके बोध के जगने के पहले ही नष्ट कर देते हैं। हमारी सारी शिक्षा-संस्थाएं, हमारी सारी संस्कार देने वाली व्यवस्था, हमारा समाज, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, एक चीज की बुनियादी शत्रु है, और वह चीज है आश्चर्य का भाव।

पहले तो धर्मों ने आश्चर्य के भाव को नष्ट कर दिया। कैसे किया? जीवन में जो-जो अज्ञात था, अननोन था और अज्ञात ही नहीं, जो-जो अज्ञेय था, अननोएबल था, धर्मों ने यह घोषणा कर दी कि हम सब जानते हैं। धर्मों ने कह दिया कि सृष्टि कैसे बनी, हमें पता है। कितने दिन में बनी है, हमें पता है। किस तारीख पर, किस सदी में और किस सन में बनी है, यह हमें पता है। परमात्मा ने क्यों प्रकृति और सृष्टि बनाई, यह हमें पता है। धार्मिक लोगों ने बहुत बड़ा असत्य बोला है। दुनिया में इससे बड़ा कोई असत्य नहीं हो सकता था कि हमें पता है कि जीवन कैसे जन्मा? कि हमें पता है कि परमात्मा क्या है? परमात्मा और जीवन है अज्ञात। अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय। अननोन ही नहीं, अननोएबल।
लेकिन धर्मों ने यह घोषणा की कि हमें पता है। धर्मगुरुओं ने यह घोषणा
की कि हमें मालूम है। उन्होंने इतने जोर से दावा किया कि हमें पता है। और फिर उन्होंने यह भी कहा कि अगर कोई कहेगा कि हमें पता नहीं है, या कोई अगर सिद्ध करना चाहेगा कि तुम अज्ञानी हो, तो हम अपनी दलील को तलवार से सिद्ध करके बता देंगे कि हम जो कहते हैं वह ठीक है। जिसके हाथ में तलवार है, वह जो कहता है, ठीक है। मनुष्य को पता नहीं है कुछ भी। मनुष्य का अज्ञान बहुत गहरा है। लेकिन कुछ अहंकारी लोगों ने, कुछ ऐसे लोगों ने, जो यह स्वीकार नहीं कर सकते थे कि हम नहीं जानते हैं। क्योंकि न जानने की स्वीकृति बहुत बड़ी ह्युमिलिटी है, बहुत बड़ी विनम्रता है। जो वस्तुतः धार्मिक होता है, उसी में यह विनम्रता होती है कि मैं नहीं जानता हूं। लेकिन पंडित में यह विनम्रता नहीं होती कि मैं नहीं जानता हूं। उसकी घोषणा होती है कि मैं जानता हूं। न केवल यही, कि मैं जानता हूं बल्कि दूसरे जो जानते हैं, गलत जानते हैं। ठीक तो केवल मैं ही जानता हूं। मेरी किताब ठीक, मेरा संप्रदाय ठीक, मेरे तीर्थंकर ठीक, मेरे पैगंबर ठीक, मेरे अवतार ठीक। मैं जो जानता हूं, वही ठीक है और बाकी सब गलत है। इस तरह की घोषणाओं की निरंतर पुनरुक्ति ने, और बच्चों के मन में बचपन से ही इन बातों को प्रविष्ट करा देने से, वह जो जीवन में अज्ञात था, वह विलीन हो गया, छिप गया। हमें लगने लगा कि हम सब कुछ जानते हैं। और जब मनुष्य को लगने लगता है कि मैं सब कुछ जानता हूं, तब आश्चर्य की कोई संभावना नहीं रह जाती। तब विस्मय का कोई कारण नहीं रह जाता। तब मिस्टीरियस के प्रविष्ट होने का कोई द्वार नहीं रह जाता। आदमी अपने ज्ञान के कारागृह में ही बंद हो जाता है। और वह चारों तरफ जो अज्ञात मौजूद है, उसके लिए कोई दरवाजा, कोई खिड़की नहीं रह जाती कि उससे प्रवेश कर सके।
तो पहले तो धर्मों ने मनुष्य के आश्चर्य की हत्या की--धर्मशास्त्रों ने, धर्मगुरुओं ने। फिर पीछे उनके आया विज्ञान। और विज्ञान ने और भी मनुष्य को यह ख्याल दे दिया कि हम सब जानते हैं। विज्ञान ने भी फिक्शन खड़े किए। धर्मों ने भी खड़े किए थे। कल्पना के लोक विज्ञान ने भी खड़े किए। क्रिश्चियन कहते हैंः ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व दुनिया की सृष्टि
की परमात्मा ने। छह दिन में सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया--रविवार के दिन। यह सब इन्हें पता है। फिर विज्ञान आया और विज्ञान ने पुरानी कल्पनाओं के लिए तो कहा कि ये कल्पनाएं हैं, फिक्शंस हैं! लेकिन नई कल्पनाएं खड़ी कर दीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि नहीं, परमात्मा ने सृष्टि की, यह तो पता नहीं, लेकिन अरबों वर्ष पहले धुएं की नीहारिकाएं थीं। उन्हीं नीहारिकाओं से सूरज का जन्म हुआ, सूरज से पृथ्वी का जन्म हुआ। पृथ्वी पर जो बड़े-बड़े गड्ढे हैं, यह जो हिंद महासागर है, पैसिफिक है, अटलांटिक है, ये गड्ढे पृथ्वी से चांद का टुकड़ा अलग निकल गया, इसलिए गड्ढे पैदा हो गए। पृथ्वी से चांद पैदा हुआ है। ये सब बातें भी अत्यंत झूठी और बेबुनियाद हैं। इन बातों के लिए भी न कोई कारण है, न कोई वजह है। और न कोई वैज्ञानिक आधार है इन बातों को कहने का। लेकिन आदमी अपने अज्ञान को स्वीकार ही नहीं करना चाहता। किसी न किसी भांति वह यह भ्रम पैदा करना चाहता है कि हम जानते हैं।

एडीसन का नाम आपने सुना होगा। एक हजार आविष्कार किए एडीसन ने। शायद दुनिया में किसी एक आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किए। विद्युत की बाबत एडीसन जितना जानता था, शायद कोई नहीं जानता था।
एडीसन अमरीका के एक छोटे से गांव में गया। उस गांव के स्कूल के बच्चों
ने एक प्रदर्शनी सजाई थी। उसमें कुछ विद्युत के खेल खिलौने बनाए थे, जो बिजली से चलते थे। मोटर बनाई थी, जहाज बनाया था। एडीसन भी देखने गया। बच्चों को क्या पता था कि जो देखने आया है वह जगत का विद्युत के संबंध में जानने वाला सबसे बड़ा विचारक है। एडीसन उन बच्चों के खिलौनों को देख कर खूब खुश होने लगा। उसने पूछा, बच्चो, ये चलते कैसे हैं? बच्चों ने कहाः इलेक्ट्रिसिटी से, विद्युत से। एडीसन ने पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं, वॉट इ.ज इलेक्ट्रीसिटी? यह विद्युत क्या है? वे बच्चे ठगे रह गए। बच्चों के अध्यापक भी ठगे रह गए, प्रधानाध्यापक भी डरा रह गया। उनको किसी को पता नहीं कि वही आदमी एडीसन है।
फिर एडीसन ने कहाः आप घबड़ाएं नहीं, मेरा नाम है एडीसन। आपने सुना होगा। वे बोले, सुना है। आप ही तो विद्युत की सब खोज-बीन किए हैं।
एडीसन ने कहाः तुम निश्चिंत रहो, चिंतित मत होओ। मैं भी नहीं जानता हूं। मैं भी उत्तर नहीं दे सकता हूं, वॉट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी। मुझे भी कोई पता नहीं कि विद्युत क्या है।
हम केवल विद्युत का उपयोग करना सीख गए हैं। विद्युत क्या है, हमें पता नहीं। अणु क्या है, हमें पता नहीं। अणुबम जरूर हम बनाना सीख गए हैं।
एक माली बगीचे में एक बीज बो देता है और एक पौधा बड़ा हो जाता है। पूछें माली से, पौधा क्या है? पूछें माली से, बीज पौधा कैसे बन जाता है? माली कहेगा, मुझे पता नहीं। हालांकि बीज को मैं बो देता हूं और पौधा बन जाता है। मैं बीज से पौधा बनाना सीख गया हूं। लेकिन पौधा क्या है, बीज क्या है, मुझे पता नहीं है।
विज्ञान भी बगीचों में काम करने वाले मालियों की तरह है, जो बीज से पौधा बनाना सीख गया है। लेकिन जीवन क्या है, विज्ञान के पास भी कोई उत्तर नहीं है। और मैं आपसे कहता हूंः इसका मतलब यह मत समझ लेना कि धर्मों के पास उत्तर है। धर्मों के पास भी उत्तर नहीं है। विज्ञान के पास भी उत्तर नहीं है।
आज तक आदमी के लिए जीवन के जो चरम प्रश्न हैं, उनका कोई उत्तर उपलब्ध नहीं हुआ है। पहले धार्मिक लोग धोखा देते रहे कि हमें उत्तर पता है। अब वैज्ञानिक धोखा दे रहे हैं, कि हमें उत्तर पता है। और चाहे धार्मिक धोखा दें, चाहे वैज्ञानिक, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी को धोखा दिया जाता रहा है।
आज तक इस सीधे से सत्य को हम स्वीकार करने का साहस नहीं कर सके कि हमें ज्ञात नहीं है कि सत्य क्या है। सत्य अज्ञात है। जीवन और परमात्मा, सब अज्ञात हैं। मैं प्रार्थना करना चाहता हूं, अगर दुनिया में चाहते हैं आप कि धर्म वापस लौट आए, तो रहस्य के बिना, मिस्टिरीयस के बिना, विस्मय के बिना, आश्चर्य के बिना धर्म वापस नहीं लौट सकता है।
पंडितों ने, दार्शनिकों ने, फिलासफर्स ने बड़े कल्पना के जाल रचे, शब्दों के जाल रचे, अनुमानों के जाल रचे और इतने तर्क दिए उन अनुमानों के लिए कि सामान्य मनुष्य को यह भ्रम पैदा हो जाता है कि शायद ये लोग जानते हैं, शायद इन्हें पता है। और इस जानने के भ्रम ने, इस ख्याल ने कि हम जान गए हैं, जीवन के प्रति हमारे जो कदम उठ सकते थे--रहस्य के, विस्मय के, आश्चर्य के, वे उठने बंद हो गए हैं। बचपन से ही हम बच्चे के आश्चर्य की हत्या करते हैं।
शायद आपको ख्याल भी न हो, बच्चों के साथ किए जाने वाले बहुत बड़े-बड़े अपराधों में यह एक बड़ा अपराध है। बच्चा पूछता है, वृक्ष क्या है? दरख्त हरे क्यों हैं? आकाश में तारे क्यों हैं? तारों में रोशनी क्यों है? आदमी कहां से पैदा होता है? ये फूल इतने रंगीन क्यों हैं? यह तितली इतनी सुंदर क्यों है?

और हम सब इस भांति सिर उठा कर उत्तर देते हैं, जैसे हमें पता है। छोटे बच्चे समझ लेते होंगे कि पिता जो कहते हैं, ठीक कहते होंगे। मां जो कहती है, ठीक कहती होंगी। गुरु जो कहते हैं, ठीक कहते होंगे।
छोटे बच्चों को धोखा दिया जा रहा है, उनकी इनोसेंस का, उनकी निर्दोषता
का शोषण किया जा रहा है। ईमानदार मां-बाप और ईमानदार शिक्षक कहेंगेः हमें कुछ भी पता नहीं। हम भी तितलियों के मामले में, आकाश के तारों के मामले में उतने ही बच्चे हैं जितने तुम हो, हमें कुछ भी पता नहीं। जीवन के संबंध में हम भी उतने ही अज्ञानी हैं जितने तुम हो, हमें कुछ भी पता नहीं है। तो बच्चों के भीतर आश्चर्य का और विस्मय का विकास होगा। तब वे युवा होते-होते अत्यंत आश्चर्य से भर जाएंगे। उनके हृदय में आश्चर्य लहरें लेने लगेगा, वे विस्मय से भर जाएंगे। वे जीवन के प्रति जानते हैं, इस भाव से नहीं, नहीं जानते हैं इस भाव से जीवन को देखेंगे। लेकिन हम, हम इस भूल में पड़ जाते हैं। हम परिचय को ज्ञान समझ लेते हैं। एक्वेंटेंस को हम नालेज समझ लेते हैं।
एक मां अपने बेटे को जन्म देती है। निश्चित ही अपने पेट में बड़ा करती है। लेकिन क्या वह जानती है जो पेट में बड़ा हो रहा है वह क्या है? अगर मां इस भूल में पड़ जाए, तो गलती करती है। यद्यपि उसके ही पेट में जो जन्म ले रहा है और बड़ा हो रहा है, उसके ही खून और मांस-मज्जा से जो बन रहा है। वह भी उसके लिए अज्ञात है, अननोन है। वह भी उसे पता नहीं कौन है और क्या है। वह बच्चा पैदा होगा। मां सोचती होगी, मैं जानती हूं अपने बेटे को।
झूठी है यह बात। कोई मां अपने बेटे को नहीं जानती। कोई बाप अपने बेटे
को नहीं जानता। लेकिन परिचय हो जाता है, तो हम सोचते हैं, हम जानते हैं। फिर हम नाम रख लेते हैं बेटे का, नाम--राम और कृष्ण और कुछ और सोचते हैं हम पहचान गए। उसका कोई नाम नहीं है जो पैदा हुआ है। नाम झूठे हैं जो हम दे रहे हैं। और इन्हीं नामों को हम ही देंगे। और हम ही इन नामों को पुकारेंगे, और हम कहेंगे कि मैं भलीभांति जानता हूं कि यह राम है।
यह राम नाम झूठा है। वह जो पीछे है वह अनाम, नेमलेस, उसका हमें कोई पता नहीं है कि उसका क्या नाम है। जो घर में जन्म लेता है, हमसे अपरिचित है, लेकिन रोज-रोज उसे देखते हैं, रोज-रोज पहचानते हैं, तो लगता है हम जानते हैं। पति सोचता है कि वह पत्नी को जानता है, पत्नी सोचती है कि वह पति को जानती है। कोई किसी को नहीं जानता। पति और पत्नी तो बहुत दूर, हम अपने को भी नहीं जानते हैं। स्वयं का भी हमें कोई पता नहीं है। और जिन्हें स्वयं का भी पता नहीं है उन्हें और किस चीज का पता हो सकता है? जिन्हें अपना ही ज्ञान नहीं उन्हें किस चीज का ज्ञान हो सकता है?
हमारा अज्ञान बहुत गहरा है, लेकिन इस अज्ञानको हम ज्ञान के शब्द सीख
कर छिपा लेते हैं और ज्ञानी बन जाते हैं। अज्ञान से भी खतरनाक वह ज्ञान है जो अज्ञान को छिपाने में सहयोगी बनता है। वे वस्त्र ज्ञान के जो अज्ञान को छिपा लेते हैं बहुत खतरनाक हैं। आदमी के जीवन में जो भी सत्य है और सुंदर है और श्रेष्ठ है, उसे ज्ञान के वस्त्रों में ही खो दिया है।
पता है आपको सौंदर्य क्या है? पता है आपको सत्य क्या है? पता है आपको शुभ क्या है? कुछ भी हमें पता नहीं है। लेकिन चूंकि किसी को भी कुछ पता नहीं है, और हम सभी यह घोषणाएं करते हैं कि हमें पता है। इसलिए मनुष्य-जाति में से कोई भी अंगुली उठा कर नहीं कहता कि झूठ बोल रहे हो आप। हम सब एक ही नाव पर सवार हैं। हम सब एक ही बीमारी से पीड़ित हैं, इसलिए हमें पता भी नहीं चलता कि कोई बड़ा झूठ जीवन में बोला जा रहा है। बहुत बड़े झूठ प्रचलित हुए हैं, लेकिन अगर झूठ सभी को पकड़ लें, तो उनका पता चलना बंद हो जाता है।
एक बार ऐसा हो गया था, एक गांव में एक जादूगर आ गया था। और उसने आकर गांव के कुएं में कोई मंत्र पढ़ा और कोई चीज डाल दी और कहा कि इस कुएं का पानी जो भी पीएगा वह पागल हो जाएगा। सांझ होते-होते गांव के सभी लोगों को उस कुएं का पानी पीना पड़ा। क्योंकि प्यास नहीं सही जा सकती, पागलपन सहा जा सकता है। मजबूरी थी, जानते हुए कि पागल हो जाएंगे, पानी पीना पड़ा। सारा गांव सांझ होते-होते पागल हो गया। सिर्फ राजा और उसकी रानी और उसका वजीर बच गए। उनके मकान में दूसरा कुआं था। वे गांव के कुएं से पानी नहीं पीते

थे, उनका अपना कुआं था। वे तीनों बच गए। वे बड़े प्रसन्न थे कि हम अच्छे बच गए हैं। पूरा गांव तो पागल हो गया है। लेकिन सांझ उन्हें पता चला कि भूल हो गई हमारे बचने में। पूरे गांव के लोग जुलूस बना कर घर के सामने आ गए और नारे लगाने लगे और उन्होंने कहा कि ऐसा मालूम होता है राजा का दिमाग खराब हो गया है। राजा को बदलेंगे हम। यह राजा नहीं चल सकता अब। यह लोकतंत्र का जमाना है। पागल राजे नहीं चल सकते। उतरो नीचे महल से। तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। हम तुम्हारा इलाज करवाएंगे।
राजा बहुत घबड़ाया। उसके सिपाही भी पागल हो गए थे। उसके नौकर-चाकर भी पागल हो गए थे। उसके सैनिक भी पागल हो गए थे। उसने अपने वजीर से कहा, क्या करें हम? बात उलटी है। पागल ये लोग हो गए हैं। लेकिन भीड़ जब पागल हो जाती है तो बताना बहुत कठिन है कि पागल हो तुम। क्या करें हम?
वजीर ने कहाः एक ही रास्ता है, पीछे के दरवाजे से हम भागें, जितनी तेजी
से भाग सकते हों, और उस कुएं का पानी पी लें जिस कुएं का पानी इन लोगों ने पीया है। तो ही हम बच सकते हैं। वह राजा और वजीर भागे। उन्होंने जाकर उस कुएं का पानी पी लिया। उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया, और गांव के लोगों ने बड़ी खुशी मनाई और भगवान को धन्यवाद दिया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया।
जब सारा समूह एक ही पागलपन से पीड़ित होता है तो पहचानना कठिन हो जाता
है कि पागलपन क्या है। और अगर कोई आदमी पहचान ले, तो वही आदमी उलटा पागल मालूम पड़ता है, भीड़ पागल नहीं मालूम पड़ती।
जीसस क्राइस्ट पागल मालूम पड़ते हैं, इसलिए भीड़ ने उन्हें सूली पर लटका दिया। सुकरात पागल मालूम पड़ता है, इसीलिए भीड़ ने उसे जहर पिला दिया। मंसूर पागल मालूम पड़ता है, भीड़ ने उसकी चमड़ी खींच ली। गांधी पागल मालूम पड़ते हैं, भीड़ ने गोली मार दी। आज तक जितने लोगों ने भीड़ के कुएं का पानी नहीं पीया, उनके साथ यही दुर्व्यवहार हुआ है। और भीड़ निश्चिंत है। भीड़ को शक पैदा नहीं होता, क्योंकि चारों तरफ सभी लोग गवाह ही होते हैं कि ठीक हैं हम।
मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूंः मनुष्य-जाति की सबसे बड़ी विक्षिप्तताओं में, सबसे बड़ी मैडनेसेस में, सबसे बड़े पागलपनों में ज्ञान का पागलपन है। और इस ज्ञान के कुएं से हम सभी ने पानी पी लिया है। चाहे उस ज्ञान के कुएं का नाम हिंदुओं का कुआं हो, चाहे उस कुएं का नाम मुसलमानों का कुआं हो, चाहे उस ज्ञान के कुएं का नाम जैनों का कुआं हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कुएं का नाम कुछ भी हो, लेकिन ज्ञान के कुओं से जिन्होंने भी पानी पी लिया है, उनके जीवन से आश्चर्य का भाव नष्ट हो जाता है। और जहां आश्चर्य गया, वहां धर्म गया, वहां दर्शन गया। और जहां विस्मय गया, जहां जीवन को विस्मय से देखने वाली आंखें चली गईं, वहां सब कुछ चला गया। वहां फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता। फिर परमात्मा की कोई खोज नहीं हो सकती, क्योंकि परमात्मा अगर कुछ है तो वही है जिसे हम मिस्टीरियस कहते हैं, जिसे मापने और जांचने का कोई उपाय नहीं, जिसे तौलने के लिए कोई तराजू नहीं, जिसको इशारा करने के लिए कोई शब्द नहीं, जिसको बताने के लिए कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं। लेकिन शास्त्रों और सिद्धांतों और ज्ञान की दीवालें बीच में खड़ी हो जाती हैं और जीवन उस तरफ बह जाता है।
बहुत दिन हुए, चीन के एक गांव में बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। हजारों लोग वहां इकट्ठे थे। कहीं इकट्ठे होने का मौका भर मिल जाए, फिर आदमी इकट्ठे होने से चुकता नहीं है, जरूर इकट्ठे हो जाते हैं। असल में अकेले, अकेले होने से आदमी इतना घबड़ाया होता है कि जहां भी भीड़ का मौका मिलता है जरूर पहुंच जाता है। बहुत लोग इकट्ठे हो गए थे। बड़ा मेला था। एक कुआं था उस मेले के किनारे ही। उस कुएं पर कोई पाट न थी, कोई घेरा न था। एक आदमी उस कुएं में गिर गया। वह बहुत कुएं के भीतर से चिल्लाने लगा कि मुझे बचाओ! मैं मरा जा रहा हूं! लेकिन उस मेले में इतना शोरगुल था कि कौन सुनता। एक बौद्ध भिक्षु कुएं के पास से निकला। उसे सुनाई पड़ा कि कोई कुएं के भीतर चिल्लाता है कि मैं मरा जा रहा हूं, मुझे बचाओ। उस भिक्षु ने झांक कर नीचे देखा और कहा, मेरे मित्र, जीवन में आनंद भी क्या है, जो बचने की तुम कामना करते हो?

जीवन है दुख, जीवन है पाप। बचने से प्रयोजन? और यह जो तृष्णा है बचने की, यह जो लस्ट फॉर लाइफ है, यही अगले जन्म का कर्म बंधन हो जाएगा। शांत रहो! उस आदमी ने कहा कि मुझे उपदेश नहीं चाहिए, कृपा करके मुझे बाहर निकालिए। लेकिन भिक्षु ने कहाः मैं किसी के कर्मों के बीच में बाधा नहीं बनता। तुमने कुछ किया होगा। किसी को कुएं में गिराया होगा, सो तुम गिरे हो। किसी पिछले जन्म का कर्मफल भोगते हो मित्र। सुनी नहीं तुमने यह सिद्धांत की बात? और अब मरते क्षणों में मोह छोड़ो जीवन का। शांति से मरो, तो निर्वाण हो जाएगा। नहीं तो फिर लौट-लौट कर आना पड़ेगा। भिक्षु आगे बढ़ गया।
उसके पीछे ही एक कनफ्यूशियन मांक, कनफ्यूशियस का एक संन्यासी आया। उसने भी कुएं में चिल्लाते हुए आदमी की आवाज सुनी। वह किनारे के पास झांका। उसने कहा कि समझ गया, कनफ्यूशियस ने लिखा है अपनी किताब में कि वही राज्य श्रेष्ठ है जो अपने कुओं पर पाट बांध देता है। जो कुओं पर पाट नहीं बांधता है वह राजा अन्यायी है। तुम घबड़ाओ मत। हम आंदोलन उठाएंगे, हम जाकर जनता को समझाएंगे। अभी हम मेले में जाते हैं। और अभी हम राजा के महल पर पहुंचते हैं। हर कुएं पर पाट होनी ही चाहिए, ताकि कोई गिर न सके।
उस आदमी ने कहाः वह पीछे करना। मैं मरा जा रहा हूं, मुझे बाहर निकालो। लेकिन उसने कहाः सवाल तुम्हारा नहीं है, सवाल जनता-जनार्दन का है। यह तुम्हारा सवाल नहीं है। एक आदमी बचता है कि मरता है, यह सवाल नहीं है। कुएं पर पाट होना चाहिए। और तुम घबड़ाओ मत, तुम निश्चिंत रहो, तुम्हारे बच्चे ऐसी दुनिया में रहेंगे जहां कुओं पर पाट होंगे।
उसने कहाः बच्चों का सवाल नहीं है। मैं मरा जाता हूं।
उस आदमी ने कहा कि बच्चों के लिए बड़ी कुर्बानी मां-बाप को करनी पड़ती है। तुम मरो, लेकिन बच्चे ऐसी दुनिया में रहेंगे जहां कोई कुएं में नहीं गिर सकेगा। तुम बेफिकर रहो।
वह कनफ्यूशियस मांक आगे बढ़ गया। उसने जाकर भीड़ में शोरगुल मचा दिया।
वह एक मंच पर सवार हो गया और उसने समझाना शुरू कर दिया कि ऐसे कुएं नहीं होने चाहिए जिन पर पाट न हों।
उन दोनों के चले जाने के बाद एक ईसाई साधु, एक ईसाई मिशनरी वहां से निकला। कुएं में किसी को चिल्लाता देख कर वह तत्क्षण कूदा और उसने निकाला उस आदमी को बाहर। और उस आदमी ने कहा कि बहुत धन्यवाद! तुम्हीं सच्चे धार्मिक आदमी मालूम पड़ते हो। एक बौद्ध भिक्षु निकला, उसने कहा कि कर्मों का फल भोग रहे हो अपना। कनफ्यूशियस का भिक्षु निकला उसने कहा कि हम राज्य को परिवर्तन करने के लिए आंदोलन चलाएंगे। तुम्हीं सच्चे धार्मिक हो।
उस ईसाई मिशनरी ने कहाः नहीं मित्र, माफ करो। मैंने तो तुम्हें इसलिए निकाला है कुएं से, क्योंकि जीसस क्राइस्ट ने कहा हैः जो सेवा करते हैं स्वर्ग उनको उपलब्ध होता है। तो हम तो यही चाहते हैं कि रोज-रोज लोग कुएं में गिरते रहें और हम उन्हें निकालते रहें। जितने ज्यादा लोग कुएं में गिरेंगे उतनी ही हमारी सेवा, उतना ही स्वर्ग का हमारा अधिकार, वह किंग्डम ऑफ गॉड जो है, उसके हम मालिक हो जाएंगे। तुम रोज-रोज गिरो। अपने घर भी लोगों को समझाओ, क्योंकि सेवा बहुत जरूरी है। बिना सर्विस के कोई परमात्मा तक कभी पहुंचता नहीं है।
आदमी कुएं में मर रहा है, लेकिन उसे देखने वाला कोई भी नहीं है, क्योंकि शास्त्र बीच में आ जाते हैं। जीवन चारों तरफ है, लेकिन उसे देखने वाला कोई भी नहीं है, क्योंकि शब्द बीच में आ जाते हैं। परमात्मा हर क्षण मौजूद है, लेकिन उससे पहचान नहीं होगी, क्योंकि ज्ञान बीच में आ जाता है। ज्ञान से बड़ी चीज जीवन और मनुष्य के बीच दूसरा कोई अवरोध, दूसरा कोई हिंडरेंस, दूसरा कोई पहाड़ नहीं है। लेकिन ज्ञान को हम समझते हैं कि बड़ी ऊंची बात है। हम समझते हैं कि ज्ञान अर्जित कर लिया तो बहुत कुछ कमाई कर ली।
ज्ञान नहीं, जो इस सरलता से कहते हैं कि हम नहीं जानते हैं, केवल वे ही विनम्र लोग, केवल वे ही विनम्र चित्त, वे ही हंबल माइंड्स, जो जानते हैं हमें कुछ भी पता नहीं, केवल वे ही उस परम सत्य के निकट पहुंच पाते हैं और उसे जान पाते हैं।

ज्ञान के भ्रम वाले लोग कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते। अज्ञान में
ही जीते और नष्ट हो जाते हैं। यह बात बड़ी उलटी मालूम होगी। मैं आपसे यह कह रहा हूंः आपको अगर अपने अज्ञान का परिपूर्ण बोध हो जाए, तो आपके जीवन में ज्ञान का जन्म हो सकता है। लेकिन वह ज्ञान बहुत दूसरा है उस ज्ञान से जो शास्त्रों से मिलता है--गीता, कुरान और बाइबिल से, उपनिषदों और वेदों से, महावीर और बुद्ध से जो ज्ञान मिलता है वह नहीं है। शब्दों से जो ज्ञान मिलता है वह नहीं। शब्द हैं डेड, मुर्दा। उनका कोई मूल्य नहीं, उनमें कोई जीवन नहीं।
खुद के प्राणों के साक्षात से जो ज्ञान मिलता है, वह बात और है। और उसे जानने के लिए अज्ञान, अज्ञान का स्पष्ट बोध होना चाहिए। जिसे अज्ञान का बोध हो जाता है, जो जानता है कि मैं नहीं जानता, उसके लिए रहस्य के द्वार खुल जाते हैं। लेकिन हमने बहुत संग्रह कर रखा है। हमने कंठस्थ कर रखे हैं ग्रंथ। हमने शब्द सीख रखे हैं। हम तोतों की भांति हैं, जिन्हें सब कुछ सिखा दिया गया है और याद करा दिया गया है। और हम इन्हीं शब्दों को दोहराते रहते हैं।
कोई पूछे आपसे, ईश्वर है? कौन सा उत्तर आता है आपके भीतर? मैं आपसे पूछता हूं, ईश्वर है? कोई उत्तर आता है आपके भीतर? किसी के भीतर आता होगा, है। अगर उसकी किताबों में ऐसा लिखा है, अगर उसके गुरुओं ने ऐसा बताया है, किसी के भीतर आता होगा, नहीं है। अगर उसकी किताबों में ऐसा लिखा है और उसके गुरुओं ने ऐसा बताया है।
हिंदुस्तान में पूछो, ईश्वर है? तो उत्तर आता है, है। और रूस में पूछो,
तो उत्तर आता है, नहीं है। हम सोचते हैं हिंदुस्तान बड़ा आस्तिक है और रूस बड़ा नास्तिक है। नहीं साहब। दोनों रटे हुए तोते बोल रहे हैं। हिंदुस्तान के तोतों को बताया जा रहा है ईश्वर है, तो वे कहते हैं, ईश्वर है। रूस के तोतों को बताया जा रहा है ईश्वर नहीं है, तो वे कहते हैं, ईश्वर नहीं है। सीखी हुई बातें जो दोहरा रहा है वह आदमी के पद से नीचे गिर रहा है। सीखी हुई बातें जो दोहरा रहा है वह अपने को तोता बना रहा है, अपने को मशीन बना रहा है। लेकिन अगर मैं पूछूं कि ईश्वर है और आपके भीतर कोई उत्तर न उठे, न हां, न न; मैं पूछूं ईश्वर है और आपके भीतर सन्नाटा छा जाए। और सत्य यही होगा कि सन्नाटा छा जाए। क्योंकि आप नहीं जानते हैं कि है या नहीं। मैं पूछूं कि ईश्वर है और आपके भीतर साइलेंस हो जाए, आपके भीतर कोई उत्तर न आए, आप मौन रह जाएं, आपके भीतर कोई शब्द घनीभूत न हो, आपके भीतर कोई रिस्पांस न हो, आपके भीतर नो-रिस्पांस की स्थिति हो जाए।
मैं पूछूं ईश्वर है और आपके भीतर सब सन्नाटा हो जाए, इस स्थिति को मैं
कह रहा हूं अज्ञान का बोध कि मुझे पता नहीं है। और इसी सन्नाटे में उसकी पगध्वनियां सुनाई पड़नी शुरू होती हैं जो परमात्मा है। इसी मौन में, इसी साइलेंस में जीवन का संस्पर्श उपलब्ध होता है।
और तब फिर खोजने हिमालय नहीं जाना पड़ता है। और तब फिर खोजने गंगा के
तट की यात्राएं नहीं करनी होती हैं। और तब फिर खोजने काशी और मक्का और मदीना नहीं जाना पड़ता है। फिर जेरुसलम की यात्रा नहीं करनी होती है। फिर मंदिरों और मस्जिदों में सिर नहीं टेकने पड़ते हैं।
इतने शांत मन से, ऐसे मन से, ऐसे माइंड से, जिसके पास उत्तर नहीं हैं-- क्योंकि उत्तर सब सीखे हुए हैं--और मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं, अगर आपका मन उस अवस्था में आ जाए जहां से कोई उत्तर नहीं आता, सिर्फ चुप्पी और मौन रह जाता है, तो आप एक अदभुत द्वार को खोलने में समर्थ हो जाएंगे, जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती। उस विनम्र मौन में, उस हंबल साइलेंस में कुछ घटित होता है, कोई क्रांति हो जाती है और एक नये मनुष्य का जन्म हो जाता है।
अब तक जिन लोगों ने भी जाना है, उन्होंने ज्ञान से नहीं जाना है, मौन
से जाना है। ज्ञान बहुत बकवासी है, ज्ञान बहुत मुखर है। और परमात्मा के निकट तो वे पहुंचते हैं, जो सब भांति मौन और शांत हैं--जिनके भीतर कोई उत्तर नहीं।

इसलिए मैं आज की रात आपसे सब उत्तर छीन लेना चाहता हूं। सब उत्तर आप यहीं छोड़ जाएं। आपकी ज्ञान की झोली में जितने कंकड़-पत्थर हों, वे यहीं छोड़ जाएं। आमतौर से साधु समझाते हैं कि हमने जो समझाया ह उसे अपनी गांठ में बांध कर घर ले जाना, यहां मत छोड़ जाना। मैं उलटी बात समझाता हूं। मैंने जो समझाया है वह, और मुझसे पहले भी जिन्होंने जो समझाया हो, कृपा करके सब आप यहीं छोड़ जाएं। और आप खाली, बिल्कुल खाली मन को लेकर, अगर घर जाकर आज रात ही सो सकें, तो आज निद्रा में ही कोई द्वार खुल सकते हैं। अगर आज ही सारे ज्ञान को आप छोड़ कर बिस्तर पर चुपचाप लेट सकें, तो हो सकता है कोई अनजान अतिथि आपके द्वार खटखटाने लगे और कहे कि खोलो, मैं आ गया। क्योंकि जो आदमी अपने ही ज्ञान से भरा है, परमात्मा के ज्ञान के लायक अवकाश उसके भीतर नहीं होता, स्पेस नहीं होती। जो अपने ज्ञान को छोड़ देता है उसके भीतर परम के ज्ञान का अवतरण शुरू हो जाता है।
आकाश से वर्षा होती है, वर्षा के दिनों में पहाड़ों पर भी पानी गिरता है, झीलों में भी पानी गिरता है, गड्ढों में भी पानी गिरता है, लेकिन पहाड़ पानी से खाली रह जाते हैं, क्योंकि वे खुद ही पहले से भरे हुए हैं। लेकिन गड्ढे पानी से भर जाते हैं, क्योंकि वे पहले से खाली हैं। बादल कोई भेद नहीं करते कि तुम पहाड़ हो कि तुम गड्ढे हो। दोनों पर पानी पानी गिरा देते हैं। लेकिन पानी गिरा हुआ व्यर्थ हो जाता है। पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं, क्योंकि अपने में भरे हैं वे पहले से ही। उनके पास कोई रिक्त-स्थान नहीं है। कोई जगह नहीं है जहां पानी भर सके। गड्ढों में पानी भर जाता है। परमात्मा की वर्षा भी प्रतिक्षण हो रही है, प्रतिपल, प्रति श्वास, लेकिन जो अपने भीतर भरे बैठे हैं वे खाली रह जाएंगे और जो अपने भीतर खाली हैं वे उसके ज्ञान और प्रकाश से भर जाते हैं।
जीवन क्रांति का दूसरा सूत्र हैः स्वयं को ज्ञान से खाली कर लें।
बड़ी मुश्किल है यह बात। आदमी और सब कुछ छोड़ सकता है, ज्ञान छोड़ने में प्राण कंपते हैं। धन छोड़ सकता है। हजारों लोग धन छोड़ कर त्यागी हो जाते हैं। पत्नी बच्चों को छोड़ सकते हैं। सैकड़ों लोग संन्यासी हो जाते हैं। लेकिन ज्ञान, ज्ञान नहीं छोड़ पाता आदमी। एक आदमी संन्यासी हो जाता है, फिर भी मुसलमान बना रहता है, फिर भी हिंदू बना रहता है।
मैं तो हैरान हो गया कि कैसे पागलों की दुनिया है! अगर गृहस्थ हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो, तो समझ में आता है। लेकिन साधु भी जैन, हिंदू, मुसलमान कैसे हो सकता है? जिसने समाज ही छोड़ दिया, उसने समाज का ज्ञान नहीं छोड़ा अब तक? समाज ने जो ज्ञान दिया था, उसको पकड़े हुए बैठा है। एक साधु भी कहता है--मैं जैन हूं, हिंदू हूं, मुसलमान हूं। साधु कहता है! ये बीमारियां साधु के पास नहीं होनी चाहिए।
लेकिन नहीं, धन छोड़ सकता है, घर छोड़ सकता है, लेकिन ज्ञान नहीं छोड़ सकता। ज्ञान मनुष्य के अहंकार की गहरी से गहरी पकड़ है। न तो धन है मनुष्य का अहंकार, न पद है अहंकार, न यश है अहंकार। अहंकार की सूक्ष्मतम, गहरी से गहरी पकड़ है ज्ञान। इसलिए जिनको यह ख्याल हो जाता है कि हम जानते हैं, वे भटक जाते हैं। उनके जानने के रास्ते बंद हो जाते हैं।
सुकरात बूढ़ा हो गया था। बुढ़ापे में सुकरात ने बड़ी अजीब बात कहना शुरू
कर दी थी। सुकरात बुढ़ापे में कहने लगा थाः मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। एक आदमी ने कहा कि हम तो यह सुन कर आए थे कि तुम परम ज्ञानी हो।
सुकरात ने कहाः किसी ने गलती से कह दिया होगा। या जब मैं जवान था तब मुझे ऐसा भ्रम था, ऐसा इलुजन मुझे भी था कि मैं जानता हूं। लेकिन जैसे-जैसे मेरा अनुभव बढ़ा, जैसे-जैसे मैंने जीवन का संपर्क पाया, जैसे-जैसे जीवन में मेरी गति हुई, जैसे-जैसे मैं जीवन की धारा में डूबा, वैसे-वैसे मुझे पता चलाः मैं क्या जानता हूं? मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। और आज मैं कह सकता हूं कि मुझे कुछ भी पता नहीं। मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं। सुकरात ने जान लिया होगा। सुकरात जान ही लेगा। सुकरात के जानने के बीच की सारी बाधाएं गिर गईं। एक ही बाधा थी--इस बात का ख्याल कि मैं जानता हूं। मैं जानता हूं--यह इतना कठोर पाषाण खड़ा कर देता है मन के भीतर, फिर और जानने का सवाल ही नहीं रह जाता है।

एक फकीर मर रहा था, मरणशय्या पर पड़ा था। कुछ मित्र इकट्ठे थे। जिंदा फकीरों के पास कभी कोई इकट्ठा नहीं होता। या तो मरते हुए फकीरों के पास लोग इकट्ठे होते हैं, या मर चुके जो उनके पास इकट्ठे होते हैं। आदमी मुर्दों का बड़ा पुराना पूजक है। मरते हुए उस फकीर के पास लोग इकट्ठे थे और पूछने लगे कि तुमने ज्ञान कहां पाया? तुम्हें ज्ञान कैसे मिला? तुमने कैसे जाना जीवन को? तुम प्रभु को कैसे उपलब्ध हुए? उसने कहाः यह बड़ा कठिन मामला है। मैं एक गांव से गुजरता था। मैंने बड़े-बड़े गुरुओं की शरण ली, लेकिन कोई गुरु गुरु साबित न हुआ। असल में जो भी कहते हैं कि हम गुरु हैं, वे दुकानदार होते हैं, वे कभी गुरु हो भी नहीं सकते। तो बहुत-बहुत गुरु खोजे, कहीं कोई ज्ञान नहीं मिला। बहुत शास्त्र देखे, बहुत से सिद्धांत याद हो गए, लेकिन जीवन में कोई फर्क न हुआ, कोई रोशनी न उतरी। लेकिन एक भ्रम मुझे पैदा हो गया कि मैं भी जानता हूं।
फिर मैं एक गांव से गुजरता था। और जिस आदमी को यह भ्रम पैदा हो जाता है
कि मैं जानता हूं, उस भ्रम के बाद दूसरी चीज शुरू होती है। कोई फंस भर जाए उसके चंगुल में, वह बिना उपदेश दिए नहीं रह सकता। कोई उसकी मुट्टी भर में आ जाए, फिर वह उपदेश जरूर देगा। तो उस फकीर ने कहाः मुझे ख्याल हो गया कि मैं जानता हूं। तब एक ही काम था, जो मैंने जान लिया, तो जो मुझे मिल जाए उसे समझा दूं। एक गांव से निकल रहा था। गांव के लोग बड़े नास्तिक मालूम होते थे, कोई सभा में आया ही नहीं। बड़े अश्रद्धालु मालूम होते थे। और दिन भर मैं नहीं बोल पाया था, तो मेरी तो बड़ी मुसीबत हो गई थी। तो मैं इस तलाश में था कि कोई एकाध श्रद्धालु मिल जाए, तो उसको उपदेश दे दूं। कोई तो नहीं मिला, एक छोटा सा बच्चा मिल गया। वह बच्चा एक हाथ में दीया लिए मंदिर में दीया रखने जाता था। मैंने उस बच्चे से कहाः बेटे ठहर, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे दे। इस दीये में रोशनी कहां से आई है, बता सकता है? इस दीये में ज्योति कहां से आई?
उस फकीर ने कहाः मैंने सोचा था कि बच्चा उत्तर नहीं दे सकेगा। फिर, फिर मुझे उपदेश देने का मौका मिल जाएगा। लेकिन बच्चे ने मुझे बड़ी मुश्किल में डाल दिया। वह बच्चा हंसने लगा और उसने फूंक मार कर दीया बुझा दिया और कहा कि स्वामी जी, ज्योति कहां चली गई, आप बता सकते हैं? अगर आप बता देंगे कि ज्योति कहां चली गई, तो मैं भी बता दूंगा कि ज्योति कहां से आई है। मेरे सारे पढ़े-लिखे शास्त्र व्यर्थ हो गए। मेरे गुरुओं से पाई सारी शिक्षा दो कौड़ी की हो गई। मैं निपट अज्ञानी की तरह खड़ा हो गया। और मुझे ख्याल आया, मैं यह भी नहीं बता सकता कि ज्योति कहां चली गई? मैं तो यह भी बताता हूं कि सृष्टि कहां से आई और सृष्टि कहां विलीन हो जाएगी। मैं तो यह भी बताता हूं कि परमात्मा पूरब में बैठा है कि पश्चिम में। मैं तो यह भी बताता हूं कि परमात्मा कौन सी प्रार्थनाएं सुन कर खुश होता है और कौन सी बातें सुन कर नाराज। और मुझे यह भी पता नहीं कि ज्योति कहां चली गई? मैंने उस बच्चे के चरणों पर सिर रख दिया और कहाः तूने मेरा ज्ञान छीन लिया। मैं कृत-कृत्य हो गया। तूने मेरा ज्ञान छीन लिया। तू मेरा पहला गुरु है।
क्या आप अपने ज्ञान को छोड़ देने की हिम्मत और साहस कर सकते हैं? अगर कर सकते हैं, तो आपके जीवन में क्रांति हो सकती है। क्योंकि ज्ञान का भाव छूटते ही जीवन भर जाएगा एक रहस्य से। सब अपरिचित हो जाएगा। और सब अज्ञात। जिस वृक्ष के पास से आप रोज-रोज निकले हैं, आज जब आप फिर उसके पास से निकलेंगे, तो पाएंगे कि यह वही वृक्ष नहीं है जो कल देखा था, ये वे ही पत्ते नहीं हैं।
जब आप घर लौटेंगे और उन्हीं बच्चों को देखेंगे जिनको कल देखा था, तो
आप पाएंगे कि ये वे ही बच्चे नहीं हैं। गंगा में बहुत पानी बह गया। जीवन की गंगा भी बहुत बदल जाती है। सब नया हो जाएगा, सब अदभुत हो जाएगा, सब आश्चर्य से भर जाएगा।
और जिस दिन पूरा जीवन आश्चर्य से भर जाता है, उसी दिन, उसी दिन उसकी गंध मिलना शुरू होनी है, उसके संगीत की ध्वनि आती है, जिसे हम प्रभु कहते हैं। परमात्मा के मंदिर के निकट केवल वे ही पहुंचते हैं, जिनकी आत्माएं

आश्चर्य से भर उठती हैं। यह दूसरा सूत्र है जीवन क्रांति का। कल मैंने कहा, अहोभाव, धन्यता। और आज कहता हूंः आश्चर्य, विस्मय, रहस्य।
कल तीसरे सूत्र की आपसे बात करूंगा। आप भी हाथ में दीये लेकर आए हैं। मैं फूंक मार कर बुझा देता हूं उनकी ज्योति को, और पूछता हूं, ज्योति कहां चली गई है? और अगर कोई उत्तर न मिले, कोई उत्तर पता न चले, और उसी अनुत्तर, उसी निरुत्तर दिशा में आप घर विदा हो जाएं, तो दूसरे सूत्र की झलक मिलनी शुरू हो जाएगी।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन क्रांति की दिशा
तीसरा प्रवचन

जीवन में जागरूकता

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा आरंभ करूंगा।
एक पूर्णिमा की रात में एक छोटे से गांव में बड़ी अदभुत घटना घट गई थी। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली थी, और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गए थे, और शराब-गृह से बाहर निकले थे, तो उन्हें ऊपर चांद की बरसती हुई चांदनी में यह ख्याल आ गया कि हम जाएं नदी पर और नौका विहार करें।
रात बड़ी सुंदर थी और मन उनके नशे से भरे हुए थे। वे गीत गाते हुए नदी
के किनारे पहुंच गए। नाव वहां बंधी थी। मछुवे नावें बांध कर अपने घर जा चुके थे। रात आधी हो गई थी। वे युवक एक नाव में सवार हो गए। उन्होंने पतवारें उठा लीं और नाव को खेना शुरू कर दिया। फिर वे देर रात तक नाव खेते रहे। सुबह होने के करीब आ गई। सुबह की ठंडी हवाओं ने उन्हें सचेत किया। उनका नशा कुछ कम हुआ और उन्होंने सोचा कि हम न मालूम कितनी दूर निकल आए हैं। आधी रात से हम नाव चला रहे हैं, पतवार चला रहे हैं। न मालूम किनारे और गांव से कितने दूर आ गए हैं? उनमें से एक ने सोचा कि उचित है कि मैं नीचे उतर कर देख लूं कि हम किस दिशा में आ गए हैं? क्योंकि नशे में जो चलते हैं उन्हें दिशा का कोई भी पता नहीं होता है। और हम कहां पहुंच गए हैं, हम किस जगह हैं, जब तक हम इसे न समझ लें तब तक हम वापस भी कैसे लौटेंगे? और फिर सुबह होने के करीब है, गांव में लोग चिंतित हो जाएंगे।
एक युवक नीचे उतरा और नीचे उतर कर जोर से हंसने लगा। दूसरे युवकों ने पूछाः हंसते क्यों हो, बात क्या है? उसने कहाः तुम भी नीचे उतर आओ और तुम भी हंसो। वे सारे लोग नीचे उतरे और सारे लोग ही हंसने लगे। आप पूछेंगे, बात क्या थी? अगर आप भी उस नाव में होते और नीचे उतरते तो आप भी हंसने लगते। बात ही कुछ ऐसी थी। वे वहीं के वहीं खड़े थे, नाव कहीं भी नहीं गई थी। असल में वे नाव की जंजीर खोलना भूल गए थे। नाव की जंजीर किनारे से बंधी थी। उन्होंने बहुत पतवार चलाई और बहुत श्रम किया, लेकिन सारा श्रम व्यर्थ हो गया था, क्योंकि किनारे से बंधी हुई नावें कोई यात्रा नहीं करतीं।
मैंने कल दो दिनों की चर्चाओं में--मनुष्य की आत्मा की नाव किन खूंटियों से बंधी है, दो खूंटियों की आपसे बात की। वे लोग जो ज्ञान से बंध जाते हैं और जिनके जीवन में विस्मय नहीं होता, उनकी आत्मा की नाव कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाती। वे वहीं खड़े रह जाते हैं जहां से यात्रा शुरू होती है। श्रम वे बहुत करते हैं, पतवार वे बहुत चलाते हैं, समय वे बहुत लगाते हैं। लेकिन नाव कहीं बढ़ती नहीं, वे वहीं रुक जाते हैं।
जिन लोगों की जीवन के प्रति दृष्टि दुख की होती है, संताप की होती है,
जो जीवन को अंधकारपूर्ण आंखों से देखते हैं, जिन्हें जीवन के प्रति अहोभाव का, आनंद के भाव का कोई अनुभव नहीं होता, जो जीवन को आनंद की आंखों से देखने की क्षमता और पात्रता नहीं जुटा पाते हैं, उनकी नाव भी किनारे से ही बंधी रह जाती है, वे भी कभी जीवन के सागर में नौका को खे नहीं पाते हैं। आज मैं तीसरी खूंटी की बात करने को हूं। और कौन से लोग बंधे रह जाते हैं? जीवन को दुख से देखने वाले, जीवन को अंधकारपूर्ण दृष्टि से देखने वाले, जीवन के सत्य को शास्त्रों से सीख लेने वाले, स्वयं के अज्ञान को शब्दों और सिद्धांतों में छिपा लेने वाले, ये बंधे रह जाते हैं। और कौन बंधा रह जाता है? आज उस आखिरी खूंटी की भी मुझे बात करनी है जिससे आदमी बंधा रह जाता है। और जो उस खूंटी से बंधा रहता है वह एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाता है, घूमता है, एक ही जगह पर घूमता है, घूमता है और घूमते- घूमते नष्ट और समाप्त हो जाता है। लेकिन किसी कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाता है। सारा जीवन इन्हीं चक्करों में व्यर्थ हो जाता है।
एक गांव में मैं गया था। एक बैल वहां कोल्हू चलाने का जीवन भर काम करता रहा। फिर वह बूढ़ा हो गया। और बैल के मालिकों ने उसे काम के योग्य न

समझ कर छोड़ दिया था। खुला वह घूमता रहता था। लेकिन मैं बड़ा हैरान हुआ। वह गोल चक्करों में ही घूमता था। खेत में उसे छोड़ देते तो वह गोल चक्कर लगाता था। जीवन भर की उसकी यह आदत थी। आज कोई बीच में खूंटी भी नहीं थी। आज किसी कोल्हू में भी वह नहीं जुता था। लेकिन जीवन भर गोल चक्करों में जो घूमा है, वह फिर भी गोल चक्करों में घूमने की आदत के कारण, गोल-गोल ही घूमता था। गांव के लोगों ने उस बैल को समझाने की बहुत कोशिश की कि इस तरह मत घूमो। लेकिन बैल कहीं किसी की सुनते हैं? बैल तो दूर, आदमी ही नहीं सुनते, तो बैल कैसे सुनेंगे? उस गांव के लोग जैसे नासमझ थे, उस बैल को समझाते थे कि सीधे चलो, गोल-गोल घूमने की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि जो गोल-गोल घूमता है, वह कहीं भी नहीं पहुंचता है। जिसे पहुंचना हो, उसे सीधे जाना होता है, गोल नहीं घूमना होता है। मुझे हंसी आई थी उन गांव के लोगों पर। मैं भी उस गांव में लोगों को समझाने गया था। गांव के एक बूढ़े आदमी ने कहा कि तुम हम पर हंसते हो कि हम बैलों को समझाते हैं। हम तुम पर हंसते हैं कि तुम आदमियों को समझाते हो। न बैल सुनते हैं, न आदमी सुनता है। और बैल तो सुन भी सकते हैं कभी, क्योंकि बैल सीधे और सरल होते हैं, पर आदमी तो बहुत तिरछा है, वह नहीं सुन सकता है।
लेकिन फिर भी चाहे यह गलती ही सही, नासमझी ही सही, आदमी को समझाना ही पड़ेगा। वह सुने या न सुने, उसे कहना ही पड़ेगा। क्या कहना है उसे?
अंतिम खूंटी के बाबत आज मैं आपसे कहना चाहता हूं। क्या कहना चाहता हूं? वह कौन सी खूंटी है जिसके आस-पास आदमी कोल्हू का एक बैल बन जाता है, एक अमृतमयी आत्मा नहीं? एक बंधा हुआ पशु बन जाता है? शायद आपको पता न हो कि पशु शब्द का अर्थ क्या होता है? पशु शब्द का अर्थ होता हैः जो पाश में बंधा हो। बंधे हुए होने को ही पशुता कहते हैं। जो बंधा है और गोल-गोल घूमता है, वही पशु है। पशु का अर्थ हैः जो पाश में बंधा है, किसी जंजीर से ठुका है, किसी कील से बंधा है। जो बंधा है वही पशु है। हम सारे लोग ही बंधे हैं। हमारे भीतर मनुष्य का भी जन्म नहीं हो पाता, परमात्मा तो बहुत दूर की मंजिल है! आदमी भी होना बहुत कठिन है।
डायोजनीज का नाम सुना होगा। जरूर सुना होगा। और यह भी हो सकता है कि डायोजनीज कहीं न कहीं आपको मिल गया हो। सुनते हैं, दो हजार साल पहले वह पैदा हुआ था, और दिन की भरी रोशनी में जलती हुई लालटेन लेकर गांवों में घूमा करता था। और हर आदमी के चेहरे के पास लालटेन ले जाकर देखता था।
लोग चौंक जाते थे कि बात क्या है? क्या देखना चाहते हैं? और दिन की रोशनी में जब कि सूरज आकाश में है, लालटेन किसलिए लिए हुए हैं? दिमाग खराब हो गया है?
डायोजनीज कहताः दिमाग मेरा खराब नहीं हुआ है। मैं आदमी की तलाश में हूं। मैं हर आदमी के चेहरे को रोशनी में देखने की कोशिश करता हूं। आदमी है या नहीं है? क्योंकि चेहरे बहुत धोखा देते हैं। चेहरों से ऐसा मालूम पड़ता है कि सब आदमी हैं और भीतर आदमियत का कोई निवास नहीं होता है।
आदमी ही होना कठिन है, परमात्मा तो दूर की मंजिल है। लेकिन मैं यह भी आपसे कहूं, जो आदमी हो जाता है, उसके लिए परमात्मा की मंजिल भी बहुत निकट आ जाती है। कौन सी चीज है जो हमें बांधे हैं, जिसके कारण हम पशु हो जाते हैं? एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे शायद इशारा ख्याल में आ सके कि कौन सी चीज हमें बांधे हुए है। कौन सी चीज के इर्द-गिर्द हम जीवन भर घूमते हैं और नष्ट होते हैं? कौन सी चीज है जिसके पीछे हम पागल की तरह चक्कर लगाते हैं और व्यर्थ हो जाते हैं?
एक जंगल के पास एक छोटा सा गांव था। और एक दिन सुबह एक सम्राट शिकार खेलते से भटक गया और उस गांव में आया। रात भर का थका-मांदा था और उसे भूख लगी थी। वह गांव के पहले ही झोपड़े पर रुका और उसने गांव के उस झोपड़े के बूढ़े आदमी से कहाः क्या मुझे दो अंडे उपलब्ध हो सकते हैं? थोड़ी चाय मिल सकती है? उस बूढ़े आदमी ने कहाः जरूर। स्वागत है आपका। आएं। वह सम्राट बैठ गया उस झोपड़े में। उसे चाय और दो अंडे दिए गए। नाश्ता कर लेने के बाद उसने पूछा कि इन अंडों के दाम कितने हुए? उस बूढ़े आदमी ने कहाः ज्यादा नहीं, केवल सौ रुपये।

सम्राट तो हैरान हो गया। उसने बहुत महंगी चीजें खरीदी थीं, लेकिन कभी सोचा भी नहीं था कि दो अंडों के दाम भी सौ रुपये हो सकते हैं! उस सम्राट ने उस बूढ़े आदमी से पूछाः आर एग्ज सो रेयर हियर? क्या इतना कठिन है अंडों का मिलना यहां? वह बूढ़ा आदमी बोला कि नहीं, एग्ज आर नॉट रेयर सर, बट किंग्ज आर। अंडे तो बहुत मुश्किल नहीं हैं, बहुत होते हैं, लेकिन राजा मिलना बहुत मुश्किल है। कभी-कभी राजा मिलते हैं। उस सम्राट ने सौ रुपये निकाल कर उस बूढ़े को दे दिए और अपने घोड़े पर सवार होकर चला गया।
उस बूढ़े की औरत ने कहाः हैरान हूं मैं, कैसा जादू किया तुमने, कि दो अंडों के सौ रुपये वसूल कर लिए? क्या तरकीब थी तुम्हारी? उस बूढ़े ने कहा, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। जिसके आस-पास आदमी जीवन भर घूमता है, वह खूंटी मुझे पता है। और उस खूंटी को छू दो और आदमी एकदम घूमना शुरू हो जाता है। मैंने वह खूंटी छू दी और राजा एकदम घूमने लगा। उसकी औरत ने कहाः मैं समझी नहीं! कौन सी खूंटी? कैसा घूमना?
उस बूढ़े ने कहाः तुझे मैं एक और घटना बताता हूं अपनी जिंदगी की। शायद उससे तुझे समझ में आ जाए।
जब मैं जवान था, तब मैं एक राजधानी में गया। मैंने वहां एक सस्ती सी पगड़ी खरीदी, जिसके दाम तीन-चार रुपये थे। लेकिन पगड़ी बड़ी रंगीन, बड़ी चमकदार थी। जैसी कि सस्ती चीजें हमेशा रंगीन और चमकदार होती हैं। जहां बहुत रंगीनी हो और बहुत चमक, समझ लेना, भीतर सस्ती चीज होनी ही चाहिए। सस्ती थी पगड़ी, लेकिन बहुत चमकदार थी, बहुत रंगीन थी। मैं उस पगड़ी को पहन कर सम्राट के दरबार में पहुंच गया। सम्राट की आंख एकदम से उस पगड़ी पर पड़ी। क्योंकि दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो कपड़ों के अलावा कुछ और देखते हों। आदमी को कौन देखता है? आत्मा को कौन देखता है? पगड़ियां भर दिखाई पड़ती हैं। उस सम्राट की नजर में एकदम पगड़ी आ गई और उसने कहाः कितने में खरीदी है? बड़ी सुंदर है, बड़ी रंगीन है। मैंने उस सम्राट को कहाः पूछते हैं कितने में खरीदी है? पांच हजार रुपये खर्च किए हैं इस पगड़ी के लिए।
सम्राट तो एकदम हैरान हो गया। लेकिन इसके पहले कि सम्राट कुछ कहता, वजीर उसके सिंहासन के पास झुका और सम्राट के कान में उसने कुछ कहा। उसने सम्राट के कान में कहाः सावधान! आदमी धोखेबाज मालूम होता है। दो, चार-पांच रुपये की पगड़ी के पांच हजार दाम बता रहा है। बेईमान है! लूटने के इरादे में है!
उस बूढ़े ने अपनी पत्नी से कहाः मैं फौरन समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। क्योंकि जो लोग किसी को लूटते रहते हैं वे दूसरे लूटने वाले से बड़े सचेत हो जाते हैं। लेकिन मैं भी हारने को राजी नहीं था। मैं वापस लौटने लगा और मैंने उस सम्राट से कहाः तो मैं जाऊं, क्योंकि मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी है, उसने मुझे यह वचन दिया है कि इस पृथ्वी पर एक ऐसा सम्राट भी है जो इस पगड़ी के पचास हजार भी दे सकता है। मैं उसी सम्राट की खोज में निकला हुआ हूं। तो मैं जाऊं? आप वह सम्राट नहीं हैं। यह राजधानी वह राजधानी नहीं है। यह दरबार वह दरबार नहीं है, जहां यह पगड़ी बिक सकेगी? लेकिन कहीं बिकेगी, मैं जाता हूं।
सम्राट ने कहाः पगड़ी रख दो। पचास हजार रुपये ले लो।
वजीर बहुत हैरान हो गया। जब मैं पचास हजार रुपये लेकर लौटने लगा, दरवाजे पर वजीर मुझे मिला और कहा, हद्द कर दी! हम भी बहुत कुशल हैं लूटने में, लेकिन यह तो जादू हो गया! मामला क्या है? तो मैंने उस वजीर के कान में कहा था कि तुम्हें पता होगा कि पगड़ियों के दाम कितने होते हैं। मुझे आदमियों की कमजोरियों का पता है, मुझे उस खूंटी का पता है जिसको छू दो और आदमी एकदम घूमने लगता है।
पता नहीं, वह बूढ़ी समझ पाई अपने पति की यह बात या नहीं। लेकिन आप समझ
गए हैं। आपके हंसने से मुझे अंदाजा लगता है, आप पहचान गए हैं, आदमी किस खूंटी से बंधा है।
अहंकार के अतिरिक्त आदमी के जीवन में और कोई खूंटी नहीं है। और जो अहंकार से बंधा है वह और हजार तरहों से बंध जाएगा। और जो अहंकार से मुक्त हो जाता है, वह और सब भांति भी मुक्त हो जाता है।

एक ही स्वतंत्रता है जीवन में, एक ही मुक्ति है, एक ही मोक्ष है और एक
ही द्वार है प्रभु काः और वह है अहंकार की खूंटी से मुक्त हो जाना। एक ही धर्म है, एक ही प्रार्थना है, एक ही पूजा हैः और वह है अहंकार से मुक्त हो जाना। एक ही मंदिर है, एक ही मस्जिद है, एक ही शिवालय है। जिस हृदय में अहंकार नहीं--वही मंदिर है, वही मस्जिद है, वही शिवालय है। आज इस अंतिम दिन इस तीसरे भ्रम के संबंध में थोड़ी बात मुझे आपसे कहनी है।
जीवन को देखने की दो ही दृष्टियां हैं और जीवन को जीने के दो ही ढंग हैं। या तो अहंकार के इर्द-गिर्द जीयो या निर-अहंकार के। या तो ईगो के आस-पास घूमो या ईगोलेसनेस के। ईगोलेसनेस के, निर-अहंकार आकाश में उड़ जाओ। जो अहंकार से बंधे हैं, वे पृथ्वी से बंधे रह जाते हैं। और जो निर-अहंकार में उठते हैं, आकाश उनका हो जाता है। आकाश की स्वतंत्रता उनकी हो जाती है, जीवन के विराट तक पहुंचने का मार्ग खुल जाता है। क्यों? क्योंकि जो क्षुद्र से मुक्त होता है, वह विराट से संयुक्त हो जाता है। यह तो गणित की तरह सीधा सा नियम है। यह तो एक युनिवर्सल, एक सार्वभौम नियम है। जो क्षुद्र से बंधा है, वह विराट से वंचित रह जाएगा। और जो क्षुद्र से मुक्त हो जाता है, वह विराट में प्रविष्ट हो जाता है।
एक बूंद थी पानी की। वह समुद्र होना चाहती थी। वह बूंद मुझसे पूछने लगी, मैं समुद्र कैसे हो जाऊं? मैंने उस बूंद से कहा, बड़ी छोटी, और एक ही तरकीब है। तो बूंद अगर बूंद होने को राजी है, अगर बूंद बूंद ही बनी रहने को उत्सुक है, तो समुद्र से मिलने का कोई भी रास्ता नहीं। लेकिन अगर तू बूंद की भांति मिटने को राजी हो जाए, तो मिटते ही सागर हो जाएगी। उस बूंद ने मेरी बात मान ली। वह सागर में कूद गई। उसने खो दिया अपने को। उसने अपने अहंकार को धो डाला। वह सागर से एक हो गई। लेकिन उसने कुछ खोया नहीं। बूंद ने खोई बूंद और हो गई सागर। इसे कोई खोना कहेगा? इसे कोई मिटना कहेगा? अगर यही मिटना है, तो फिर पाना और क्या हो सकता है?
हम अहंकार की बूंदें बने हुए हैं और परमात्मा के सागर को खोजने निकल पड़े हैं। हम अहंकार के छोटे-छोटे क्षुद्र बिंदु बने हुए हैं, और विराट के, असीम के साथ एक होने की कामना ने हमें पीड़ित कर रखा है। हम बूंद के किनारे से बंधे हैं और सागर की यात्रा, अज्ञात सागर की यात्रा के आमंत्रण को हमने स्वीकार कर लिया है। इन्हीं दोनों के बीच खिंच-खिंच कर आदमी नष्ट हो जाता है। वह अहंकार को भी बचा लेना चाहता है, और प्रभु को भी पा लेना चाहता है। कबीर कहते थे, उसकी गली बहुत संकरी है। वहां दो नहीं समा सकेंगे--या तो वही हो सकता है या फिर हम हो सकते हैं। हमारा सारा जीवन अहंकार को परिपुष्ट करने में व्यतीत होता है, विसर्जित करने में नहीं। हम उसे मजबूत करते हैं, जो हमारी पीड़ा है। हम उसी घाव को गहरा करते हैं जो हमारा दुख है। हम उसी बीमारी को पानी सींचते हैं जो हमारे प्राण लिए लेती है। अहंकार को सींचने के सिवाय हम जीवन भर और क्या करते हैं? किसलिए उठते हैं मकान आकाश को छूने वाले? आदमी के रहने के लिए? झूठी है यह बात। अहंकार का निवास बनने के लिए। आदमी के रहने के लिए छोटे झोपड़े भी काफी हैं, लेकिन अहंकार के लिए बड़े से बड़े मकान भी छोटे हैं। अहंकार उठाता है बड़े मकानों को कि आकाश छू लें।
किसलिए विजय-यात्राएं चलती हैं? किसलिए सिकंदर, नेपोलियन और चंगीज पैदा होते हैं? जीने से--चंगीज का, सिकंदर का, नेपोलियन का--जीवन से क्या वास्ता है? लेकिन नहीं, अहंकार की यात्राएं बड़ी दूर ले जाती हैं आदमी को। सिकंदर जिस दिन मरने को था, बहुत उदास था। किसी ने पूछाः तुम इतने उदास क्यों हो? सिकंदर ने कहा, मैं इसलिए उदास हूं कि सारी दुनिया तो मैंने करीब-करीब जीत ली। अब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया हूं। दूसरी कोई दुनिया ही नहीं है, जिसको मैं आगे जीतूं। और मेरे भीतर बड़ा खाली-खालीपन मालूम होता है। क्योंकि जब तक मैं जीतता ही न रहूं, तब तक मुझे कोई चैन नहीं। और दुनिया समाप्त होने के करीब आ गई है। दूसरी कोई दुनिया नहीं है। मैं क्या जीतूं?

अहंकार दुनिया को जीत ले, तो फिर दूसरी दुनिया को जीतने की आकांक्षा शुरू हो जाती है। किसलिए धन इकट्ठा होता है? इसलिए कि जीवन में कोई आनंद मिल सके?
अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति मरण-शय्या पर पड़ा था--कारनेगी। एक मित्र ने उससे पूछाः कितनी संपत्ति तुमने जीवन में इकट्ठी की है? उसने कहाः ज्यादा नहीं; केवल दस अरब। मित्र ने कहाः दस अरब! कहते हो, ज्यादा नहीं? कारनेगी ने कहाः मेरे इरादे तो सौ अरब इकट्ठा करने के थे, लेकिन बुढ़ापा निकट आ गया, योजना अधूरी रही जाती है।
क्या आप सोचते हैं कि कारनेगी सौ अरब इकट्ठा कर लेता तो कोई फर्क पड़ जाता? जरा भी फर्क पड़ने वाला नहीं था। आदमी को हम भलीभांति जानते हैं, फर्क जरा भी नहीं पड़ सकता था। कारनेगी के पास सौ अरब इकट्ठे हो जाते, तो कारनेगी के इरादे हजार अरब पर पहुंच जाते।
आदमी का इरादा उसके आगे चलता है। आदमी की वासना उसके आगे चलती है। आदमी हमेशा पीछे रह जाता है। मंजिल, जिसको वह छूना चाहता है और आगे हट जाती है। अहंकार दौड़ाता है, दौड़ाता है, कहीं भी पहुंचाता नहीं है।
एक छोटी सी बच्चों की कथा है।
अलाइस नाम की लड़की स्वर्ग में पहुंच गई, परियों के देश में। पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुंचते-पहुंचते बहुत थक गई थी। भूख लग आई थी। स्वर्ग पर पहुंचते ही, परियों के देश में पहुंचते ही उसे दिखाई पड़ा कि दूर एक आम की घनी छाया के नीचे परियों की रानी खड़ी है और उसके पास फलों के और मिठाइयों के थाल सजे हैं। और वह रानी उस भूखी अलाइस को बुला रही है कि आ जाओ। पास ही है वह। वह दिखाई पड़ रही है। उसकी आवाज सुनाई पड़ती है कि अलाइस आ जा। अलाइस दौड़ना शुरू करती है। सुबह है, सूरज निकल रहा है--जब दौड़ शुरू होती है। फिर दोपहर हो जाती है, सूरज ऊपर आ गया है और अलाइस दौड़ी चली जा रही है। वह थक गई है। उसने खड़ी होकर चिल्ला कर पूछा कि कैसी दुनिया है तुम्हारी? सुबह से मैं दौड़ रही हूं, लेकिन मेरे और तुम्हारे बीच का फासला, डिस्टेंस पूरा नहीं होता? तुम उतनी ही दूर मालूम पड़ती हो रानी?
रानी ने चिल्ला कर कहाः घबड़ा मत। दौड़ती आ। जो दौड़ते हैं वे पहुंच जाते हैं। खड़ी होकर समय मत खो। थोड़ी देर में सूरज ढल जाएगा और सांझ आ जाएगी। दौड़, जल्दी आ।
अलाइस और तेजी से दौड़ने लगी। सूरज जैसे-जैसे नीचे उतरने लगा, अलाइस और तेज दौड़ रही है। और तेज दौड़ रही है। लेकिन न मालूम कैसी पागल दुनिया है वह-- रानी उतनी ही दूर--रानी और उसके बीच का फासला कम नहीं होता है। फिर वह थक कर, चकनाचूर होकर गिर पड़ती है। और चिल्लाती है कि मामला क्या है? ये कैसे रास्ते हैं परियों के देश के कि मैं सुबह से दौड़ रही हूं, सूरज डूबने के करीब आ गया है, मैं अब तक तुम्हारे पास नहीं पहुंच पाई? तुम उतनी ही दूर खड़ी हो, जितना सुबह थी।
वह रानी खूब हंसने लगी। उसने कहाः पागल अलाइस। परियों के देश में ही रास्ते ऐसे नहीं हैं, आदमियों के देश में भी रास्ते ऐसे ही हैं। लोग दौड़ते हैं लेकिन पहुंचते कभी भी नहीं। फासला उतना ही बना रहता है।
जन्म के साथ आदमी जहां होता है, मरने के साथ वहीं पाता है। कोई फासला पूरा नहीं होता। कोई यात्रा पूरी नहीं होती। क्यों नहीं होती है यात्रा पूरी? जिस अहंकार को हम भरने चले हैं, वह एकदम झूठी इकाई है, फाल्स एनटायटी है। वह होती तो भर भी जाती। वह होती तो हम जीत भी लेते। वह होती तो हम उसे पूरा भी कर लेते। वह होती तो हम उसे फुलफिलमेंट, उसकी पूर्ति का कोई न कोई रास्ता खोज लेते। लेकिन अहंकार है झूठी इकाई। आदमी के भीतर अहंकार से ज्यादा बड़ा कोई असत्य नहीं है। वह है नहीं। मैं जैसी कोई भी चीज शब्दों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं। और जिस दिन थोड़ा शब्दों को छोड़ कर भीतर झांकेंगे, तो वहां किसी "मैं" को नहीं पाएंगे। कभी किसी ने नहीं पाया है। मैं एक शब्द मात्र है, एक संज्ञा मात्र है, एक कामचलाऊ शब्द। हमारे सभी शब्द कामचलाऊ हैं। एक आदमी का नाम हम राम रख लेते हैं, एक का कृष्ण रख लेते हैं। नाम झूठे हैं। दूसरे लोगों को पुकारने के लिए राम रख लेते हैं नाम, ताकि दूसरे लोग पुकारें तो पता चल सके कि किसको पुकार रहे हैं। दूसरे

को पुकारने के लिए होता है नाम। और खुद को पुकारने के लिए होती है मैं की इकाई। अन्यथा हम क्या पुकारें अपने आपको? तो कहते हैंः मैं। यह शब्द काम दे देता है जीवन में। लेकिन यह शब्द बड़ा झूठा है। इसके पीछे कोई भी सब्स्टेंस नहीं, यह बिल्कुल शैडो है। इसके पीछे कोई भी वस्तु नहीं, कोई पदार्थ नहीं। यह बिल्कुल झूठी छाया है। और इस छाया को ही भरने में, दौड़ने में हम लगे रहते हैं। छाया को ही पकड़ने में लगे रहते हैं।
एक संन्यासी एक घर के सामने से निकलता था। एक छोटा सा बच्चा घुटने टेक
कर चलता था। सुबह थी और धूप निकली थी और उस बच्चे की छाया आगे पड़ रही थी। वह बच्चा अपने सिर को पकड़ने के लिए हाथ ले जाता, लेकिन जब तक उसका हाथ पहुंचता सिर आगे बढ़ जाता। बच्चा थक गया और रोने लगा और चिल्लाने लगा। और उसकी मां उसे बहुत समझाने लगी कि पागल, यह छाया है। छाया पकड़ी नहीं जा सकती। लेकिन बच्चे समझ सकते हैं कि क्या छाया है और क्या सत्य है? जो समझ लेता है कि क्या छाया है और क्या सत्य, क्या सब्स्टेंस है और क्या शैडो--वह बच्चा नहीं रह जाता, वह प्रौढ़ हो जाता है। उसे मैच्योरिटी उपलब्ध हो जाती है। बच्चे कभी नहीं समझते कि छाया क्या है, सपना क्या है, झूठ क्या है। वह बच्चा रोने लगा, वह कहने लगा कि मुझे तो पकड़ना है इस छाया के सिर को।
वह संन्यासी भीख मांगने आया था। उसने उसकी मां से कहाः मैं पकड़ा देता हूं इसे। वह बच्चे के पास गया। उस रोते हुए बच्चे की आंखों से आंसू टपकते हैं। सभी बच्चों की आंखों से आंसू टपकते हैं। जिंदगी भर दौड़ते हैं और पकड़ नहीं पाते उसे जिसे पकड़ने की योजना बनाई है।
बूढ़े भी रोते हैं और बच्चे भी रोते हैं। वह बच्चा भी रो रहा था, तो कोई नासमझी तो नहीं कर रहा था। उस संन्यासी ने उसके पास जाकर कहा, बेटे रो मत। क्या करना है, तुझे छाया पकड़नी है?
उस बच्चे ने कहाः मुझे छाया पकड़नी है। मैं सुबह से परेशान हो गया, थक गया। उस संन्यासी ने कहाः जीवन भर की कोशिश कर तो थक जाएगा, परेशान हो जाएगा, छाया को पकड़ने का यह रास्ता नहीं है। उस बच्चे ने पूछा, फिर रास्ता क्या है? संन्यासी ने उस बच्चे का हाथ पकड़ा और बच्चे के सिर पर रख दिया। इधर हाथ सिर पर गया वहां छाया के ऊपर भी सिर पर भी हाथ चला गया। संन्यासी ने कहाः देख, पकड़ ली तूने छाया। छाया को सीधा पकड़ेगा तो नहीं पकड़ सकेगा कभी भी। लेकिन अपने को पकड़ लेगा, तो छाया तो पकड़ में आ ही जाती है।
जो अहंकार को पकड़ने के लिए दौड़ते हैं, वे अहंकार को कभी नहीं पकड़ पाते। अहंकार मात्र छाया है। लेकिन जो आत्मा को पकड़ लेते हैं, अहंकार तो पकड़ में आ ही जाता है, वह तो छाया है, उसका कोई मूल्य नहीं। केवल वे ही लोग तृप्ति को, केवल वे ही लोग कंटेंटमेंट को, केवल वे ही लोग फुलफिलमेंट को, आप्तकामता को उपलब्ध होते हैं, जो आत्मा को उपलब्ध होते हैं। आत्मा और अहंकार के बीच चुनाव है। आत्मा और अहंकार के बीच सारा विकल्प है। आत्मा और अहंकार के बीच जीवन की सारी व्यथा, सारी पीड़ा है। जो अहंकार की तरफ जाते हैं वे भटक जाते हैं। उन्होंने गलत खूंटी के आस-पास जीवन को चकरीला बना लेंगे। लेकिन जो अहंकार से पीछे हटते हैं और उसकी तरफ जाते हैं। जो सब्स्टेंस है, जो मूल है, जो भीतर है, जो मैं हूं वस्तुतः, जो मेरा ऑथेंटिक बीइंग है, जो उसकी तरफ जाते हैं, वे उपलब्ध हो जाते हैं। और उनके लिए छायाएं जीतने को नहीं रह जातीं।
दुनिया में दो ही तरह की यात्राएं हैं--अहंकार को भरने की यात्रा और आत्मा को उपलब्ध करने की यात्रा। लेकिन अहंकार से जो बंधा रह जाता है वह आत्मा से वंचित रह जाता है।
यह अहंकार क्या हम छोड़ने की कोशिश करें? नहीं, अगर छोड़ने की कोशिश की,
तो अहंकार से कभी मुक्त न हो सकेंगे आप। छाया न तो पकड़ी जा सकती है और न छोड़ी जा सकती है। जो चीज छोड़ी जा सकती है, वह पकड़ी भी जा सकती थी। छाया न छोड़ी जा सकती है, न पकड़ी जा सकती है। अहंकार न पकड़ा जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। इसलिए पकड़ने वाले तो भूल में पड़ते ही हैं, छोड़ने वाले और भी बड़ी भूल में पड़ जाते हैं।
मैं एक संन्यासी के पास कुछ दिन रुका था। वे मुझसे कहते थे, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने उनसे पूछाः यह लात कब मारी थी आपने? वे

कहने लगे, कोई तीस वर्ष हो गए। फिर मैंने उन्हें कहाः आप नाराज न हों तो मैं एक बात कहूं, और नाराज होने का इसलिए कह देता हूं, क्योंकि संन्यासियों की नाराज होने की बड़ी पुरानी आदत है, बड़ी पुरानी परंपरा है। अभिशाप दे सकते हैं। जन्म-जन्म बिगाड़ सकते हैं। सो अगर नाराज न हों, तो एक बात पूछूं? मेरा इतना कहते, नाराज तो वे हो ही गए। लेकिन फिर भी उन्होंने कहाः हां, कहिए, क्या कहते हैं?

मैंने कहाः तीस वर्ष पहले यह लात मारी थी आपने, तो लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो तीस वर्ष तक उसकी स्मृति, उसकी याद की कोई भी जरूरत नहीं? तीस वर्ष पहले आपका अहंकार कहता होगाः लाखों रुपये हैं मेरे पास, मैं कुछ हूं, समबडी हूं। फिर आपने लात मार दी। आपने सोचा कि लाखों रुपये छोड़ दिए, तो अहंकार चला जाएगा। नहीं, जिस दिन से आपने लाखों छोड़े उस दिन से आपके अहंकार ने नई वाणी बोलनी शुरू कर दी। वे कहने लगे, मैंने लाखों रुपये छोड़ दिए। मैंने लाखों रुपये छोड़ दिए हैं!
लाखों रुपये थे, तो भी सड़क पर अकड़ कर चलते थे। लाखों रुपये छोड़ दिए, तो
और भी ज्यादा अकड़ कर चलने लगे। रुपयों की अकड़ तो दिखाई पड़ जाती है, बड़ी स्थूल है। लेकिन त्याग की अकड़ दिखाई भी नहीं पड़ती, बड़ी सूक्ष्म है। धन छोड़ देने से अहंकार नहीं छूटता, पद छोड़ देने से अहंकार नहीं छूटता, घर छोड़ देने से अहंकार नहीं छूटता। अहंकार है ही नहीं कि छोड़ा जा सके। तो जो भी आप छोड़ेंगे, अहंकार उसी छोड़ने को अपना उपकरण बना लेगा और कहेगा, मैंने छोड़ा! मैं हूं छोड़ने वाला! अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। छाया बड़ी सूक्ष्म है। पकड़ में नहीं आती, छोड़ने में नहीं आती। सो जो लोग सोचते हैं कि अहंकार छोड़ देंगे हम, वे और भी बड़ी भूल में गिर जाते हैं। आज तक किसी ने अहंकार कभी छोड़ा नहीं है। फिर अहंकार भरा भी नहीं जा सकता और छोड़ा भी नहीं जा सकता। तो हम क्या करें?
अहंकार जाना जा सकता है। अहंकार पहचाना जा सकता है। अहंकार की रिकग्निशन हो सकती है। अहंकार की प्रतिभिज्ञा हो सकती है। अहंकार का बोध हो सकता है। अहंकार के प्रति मैं जागरूक हो सकता हूं। और जो आदमी अहंकार के प्रति जागरूक हो जाता है उसका अहंकार विसर्जित हो जाता है। मनुष्य की निद्रा में अहंकार है, मनुष्य के जागरण में नहीं। जैसे ही कोई जाग कर देखने की कोशिश करता है कहां है अहंकार, वैसे ही अहंकार हटने लगता है। जैसे एक गांव में एक घर था। और उस घर में बड़ा अंधेरा था। और कई हजार साल का अंधेरा था। और उस गांव के लोग उस घर में नहीं जाते थे। मैं उस गांव में गया और मैंने कहाः इस घर को ऐसा ही क्यों छोड़ रखा है? उन्होंने कहाः इस घर में हजारों साल का अंधेरा है। मैंने कहाः अंधेरे की कोई ताकत होती है? दीया जलाओ और भीतर पहुंच जाओ। उन्होंने कहाः दीया जलाने से क्या होगा? एकाध रात का अंधेरा नहीं है, हजारों साल का अंधेरा है। हजारों साल तक दीये जलाओ, तब कहीं खतम हो सकता है।
गणित बिल्कुल ठीक था, बिल्कुल लॉजिकल थी बात, तर्कयुक्त थी। मैं भी डरा। बात तो ठीक ही थी। हजारों साल से घिरा अंधकार! कहीं एक दिन के दीये जलाने से दूर हो सकता है? फिर भी मैंने कहाः एक कोशिश तो करके देख ही लें। क्योंकि जिंदगी में कई बार गणित काम नहीं पड़ता और तर्क व्यर्थ हो जाता है। जिंदगी बड़ी अनूठी है। वह तर्कों के पार चली जाती है और गणित से दूर निकल जाती है। गणित में हमेशा दो और दो चार होते हैं। जिंदगी में कभी पांच भी हो जाते हैं दो और दो और कभी तीन भी रह जाते हैं। जिंदगी गणित नहीं है। तो चलें, देख लें। वे लोग राजी नहीं हुए। उन्होंने कहाः जाने से फायदा क्या है? हम ही नहीं कह रहे हैं यह बात, हमारे बापदादे भी यही कहते थे--इस मकान में दीया मत जलाना। हजारों साल का अंधेरा है। उनके बापदादों ने भी यही कहा था। और आप क्या बड़े परंपरा के विरोधी मालूम होते हैं? आप शास्त्रों को नहीं मानते? बुजुर्गों को नहीं मानते? सब नासमझ थे? हमारे गांव में तो लिखा हुआ रखा है कि उस घर में दीया मत जलाना। वहां हजारों साल पुराना अंधेरा है, वह मिट नहीं सकता। फिर भी मैंने उन्हें बामुश्किल राजी किया कि चलो देख तो लें। बहुत से बहुत तो यही होगा कि हम असफल होंगे। बामुश्किल वे

जाने को राजी हुए। दीया जलाते ही, वहां तो कोई भी अंधेरा नहीं था। वे बहुत हैरान थे। उन्होंने कहाः यह अंधेरा कहां गया?
मैंने कहाः दीया लो हाथ में और खोजो कि कहां है अंधेरा? और अगर किसी दिन मिल जाए, तो मुझे खबर कर देना। मैं फिर तुम्हारे गांव में आ जाऊंगा। अभी तक उनकी कोई खबर नहीं आई। खोज रहे होंगे वे लोग दीये लेकर अंधेरे को। और कहीं दीये के सामने अंधेरा आता है? कहीं दीये को अंधेरा मिलता है? अहंकार एक अंधकार छाया है। जो अपने भीतर दीये को लेकर जाता है, वह उसे नहीं पाता है। तो न तो उसे छोड़ना है, न उसे भरना है। एक दीया जलाना है भीतर और उसे देखना है। उस दीये की रोशनी में कि वह कहां है। अपने भीतर जाग कर देखना है कि कहां है अहंकार! नहीं पाया जाता है। और जहां अहंकार नहीं पाया जाता है, वहां जो मिल जाता है, उसी को कोई परमात्मा कहता है, कोई आत्मा कहता है, कोई सत्य कहता है। उसी को कोई सौंदर्य कहता है, उसी को कोई और नाम देता है।
नामों के भेद हैं वे फिर। अहंकार जहां नहीं है, वहां वह मिल जाता है जो सबका प्राणों का प्राण है, जो प्यारों से प्यारा है। वह जो बिलॅविड है, वह जो प्रीतम है, वह उपलब्ध हो जाता है। लेकिन हम इससे बंधे हैं और इसी के साथ जीते और मरते हैं, इसलिए उसकी तरफ आंख नहीं जा पाती। इसे देखना जरूरी है, इसे छोड़ना जरूरी नहीं है। इससे भागना जरूरी नहीं है, इसे पहचानना जरूरी है।
अहंकार को देखने की प्रक्रिया का नाम है ध्यान, अहंकार को देखने की प्रक्रिया का नाम है मेडिटेशन। कैसे हम देखें इसे जो हमें घेरे हुए है और पकड़े हुए है? क्या है रास्ता? कोई घड़ी आधी घड़ी किसी मंदिर में बैठ जाने से यह नहीं देखा जा सकता। मंदिर में बैठने वालों का तो यह और भी मजबूत हो जाता है, क्योंकि उन्हें ख्याल होता है हम धार्मिक हैं। बाकी सारा जगत अधार्मिक है। क्योंकि हम मंदिर आते हैं और हमारा स्वर्ग निश्चित है और बाकी सब नरक में सड़ेंगे।
क्या आपको पता है? ईसाई मजहब यह मानता रहा है कि जो लोग संत पुरुष हैं,
जो धार्मिक पुरुष हैं, वे लोग स्वर्ग के आनंद उठाएंगे। जो पापी हैं वे नरक में कष्ट भोगेंगे। और स्वर्ग में जो धार्मिक लोग जाएंगे, उन्हें एक विशेष प्रकार के सुख की भी सुविधा रहेगी और वह यह कि नरक में जो पापी कष्ट भोग रहे हैं, उनको देखने का मजा भी वे ले सकेंगे। वहां से वे देख सकेंगे कि कितने पापी नरक में सड़ रहे हैं और कष्ट झेल रहे हैं। जिन लोगों ने यह ख्याल किया होगा, पुण्यात्माओं ने, धार्मिक लोगों ने, कि पापियों को कष्ट में और नरक के कड़ाहों में जलते हुए देखने का मजा भी हम लेंगे, वे कैसे लोग रहे होंगे इसे आप भलीभांति सोच सकते हैं। और यह कोई ईसाइयत का सवाल नहीं है। दुनिया के सारे धर्म और दुनिया के सारे तथाकथित धार्मिक लोग, ये सो-काल्ड रिलिजियस जो हैं, इन सारे लोगों ने अपने को स्वर्ग में ले जाने की और दूसरों को नरक में डालने की पूरी योजना और व्यवस्था कर रखी है। क्योंकि वे यह कह सकते हैं भगवान को कि मैं रोज तुम्हारे नाम पर माला फेरता था और इस आदमी ने माला नहीं फेरी, इसको डालो कड़ाहे में। मैं रोज मंदिर आता था, एक भी दिन नहीं चूका। सर्दी पड़ती थी, तब भी आता था। धूप पड़ती थी, तब भी आता था। यह आदमी कभी मंदिर में नहीं दिखाई पड़ा। डालो इसको कड़ाहे में। मैं रोज गीता पढ़ता था, कुरान पढ़ता था, बाइबिल पढ़ता था। रोज तुम्हारे भजन-कीर्तन करता था। व्यर्थ गए वे सब? मुझे बैठाओ स्वर्ग में। लेकिन मुझे मजा अकेले इतने से नहीं आएगा कि मैं स्वर्ग मैं बैठ जाऊं। उन सब लोगों को जो मेरे पड़ोस में रहते थे बिना नरक में डाले कोई आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। उन सबको डालो नरक में।
जर्मन कवि था, हेन। हेन ने एक कविता लिखी है। उस कविता में लिखा है कि
एक रात भगवान ने मुझसे पूछा कि तू चाहता क्या है जिससे तू खुश हो जाए? तो मैंने कहाः एक बहुत बड़ा मकान चाहता हूं, जैसा गांव में दूसरा न हो। भगवान ने कहा, ठीक, यह हो जाएगा। और क्या चाहता है? एक बहुत शानदार बगीचा चाहता हूं; जैसा पृथ्वी पर न हो। भगवान ने कहाः ठीक, यह भी हो जाएगा। और क्या चाहता है? मैं जो भी सुख जिस क्षण चाहूं उसी वक्त मुझे मिल जाए। भगवान ने

कहाः यह भी हो जाएगा। और क्या चाहता है? हेन ने कहाः अगर आप मानते ही नहीं और मेरे दिल की मुराद पूरी ही करना चाहते हैं, तो एक काम और कर दें। मेरे बगीचे के दरख्त जो हों, मेरे पड़ोसी उन दरख्तों से लटके रहें, तो मुझे पूरा आनंद उपलब्ध हो जाएगा। मेरे पड़ोसी दरख्तों से लटके रहें, तो मुझे पूरा आनंद उपलब्ध हो जाएगा। अगर आप मानते ही नहीं हो, मेरे दिल की आखिरी ख्वाहिश पूरी करना चाहते हो, तो इतना कर दें कि मेरे सारे पड़ोसी दरख्तों से हैंग कर दिए जाएं, गर्दनों से लटके रहें।
नींद खुल गई हेन की और उसने बाद में लिखा कि मैं बहुत घबड़ाया कि मेरे भीतर भी कैसी-कैसी कामनाएं हैं। लेकिन अगर आप धार्मिक आदमियों के मन में खोजेंगे, तो सबके मन में यह कामना है कि पड़ोसी नरक में चले जाएं और हम स्वर्ग में पहुंच जाएं। वे स्वर्ग में जाने के लिए सारा आयोजन करते हैं। मंदिर में बैठने वाला अहंकार से मुक्त नहीं होता। स्वर्ग में जाने की कामना रखने वाला अहंकारी ही है। मुझे परमात्मा मिल जाए, मैं परमात्मा को भी पजेस कर लूं। वह मेरी संपत्ति बन जाए। यह भी अहंकार की ही दौड़ है।
फिर कैसे?
चौबीस घंटे जागरूक होना पड़ता है और देखना पड़ता है कि जीवन की किन-किन क्रियाओं में अहंकार खड़ा होता है। क्या वस्त्रों के पहनने में खड़ा होता है? आंख के देखने के ढंग में खड़ा होता है? पैर के उठने में खड़ा होता है? बोलने में खड़ा होता है कि चुप रह जाने में खड़ा होता है? कहां-कहां अहंकार खड़ा होता है? किन-किन जगहों से सिर उठाता है? चौबीस घंटे एक अवेयरनेस, एक होश चाहिए कि कहां खड़ा होता है। कहां खड़ा होता है? चौबीस घंटे खोज-बीन चाहिए दीया लेकर कि अहंकार कहां खड़ा होता है, कैसे खड़ा होता है? क्या है उसकी प्रोसेस? उसके खड़े होने की प्रक्रिया क्या है? कैसे निर्मित होता है भीतर? कैसे संघटित होता है? क्या है मार्ग उसके बन जाने का?
और अगर चौबीस घंटे कोई देखता रहे, देखता रहे, खोजता रहे, खोजता रहे--तो बहुत हैरानी, बहुत आश्चर्य, बहुत चमत्कार अनुभव करेगा। जिन-जिन जगहों पर वह खोज लेगा कि यहां-यहां अहंकार खड़ा होता है वहीं-वहीं से अहंकार विदा हो जाएगा। और जिस दिन जीवन के किसी पहलू में और चित्त के किसी हिस्से में अहंकार की खोज पूरी हो जाएगी, कोई अनजान, अपरिचित कोना बाकी नहीं बचेगा मन का और माइंड का, उसी दिन अहंकार के बाहर हो जाते हैं।
एक सम्राट था। एक फकीर ने उस सम्राट से कहा कि तू अगर चाहता है कि परमात्मा को पा ले, तो एक ही रास्ता है। तू मेरे झोपड़े पर आ जा और कुछ दिन मेरे साथ रह जा। उस सम्राट की बड़ी तीव्र प्यास थी और आकांक्षा थी। वह उस फकीर के झोपड़े पर चला गया। उस फकीर ने कहाः कल सुबह से तेरी शिक्षा शुरू होगी और शिक्षा बड़ी अजीब है। शिक्षा यह है कि कल सुबह से तू कुछ भी कर रहा होगा और मैं लकड़ी की तलवार लेकर तेरे पीछे से हमला कर दूंगा। तू खाना खा रहा होगा। तू झोपड़े में बुहारी लगा रहा होगा, तू कपड़े धो रहा होगा, तू स्नान करता होगा और मैं तेरे ऊपर तलवार से हमला कर दूंगा। लकड़ी की तलवार होगी। हमेशा सावधान रहना कि मैं कब हमला करता हूं। क्योंकि मेरा कोई ठिकाना नहीं। मैं कोई खोज-खबर नहीं दूंगा। पहले से रेडियो में कोई खबर नहीं निकालूंगा। अखबार में, स्थानीय कार्यक्रम में खबर नहीं होगी कि आज मैं यह करने वाला हूं। यह कोई खबर नहीं होगी, कोई घोषणा नहीं, कोई सूचना नहीं, किसी भी क्षण हमला कर दूंगा। तैयार रहना!
उस सम्राट ने कहाः लेकिन इससे मतलब क्या है?
वह फकीर बोलाः अहंकार इसी भांति चौबीस घंटे न मालूम कहां-कहां से हमले करता है। सो मैं हमला करूंगा। मेरी तलवार का ख्याल रखना!
सात दिन में सम्राट की हड्डी-पसलियां टूट गईं। क्योंकि चौबीसों घंटे
वह बूढ़ा फकीर न मालूम कब हमला करने लगा। वह सम्राट किताब पढ़ रहा है और हमला हो जाए! लेकिन सात दिन में उसे यह भी उसके ख्याल में आ गया कि सावधानी जैसी भी कोई चीज है, अलर्टनेस जैसी भी कोई चीज है। पहली दफा जिंदगी में उसे पता चला कि मैं अभी तक सोया-सोया जीता रहा। अभी तक मैं होश से नहीं जीया। कभी मैंने होश का ख्याल ही नहीं किया। लेकिन सात दिन बार-बार चुनौती मिली। चोट पड़ी। भीतर कोई चीज जागने लगी और ख्याल रखने लगी कि हमला होने को है। हमला

होने को है। पंद्रह दिन पूरे होते-होते हमले की खबर उसे मिलने लगी। गुरु के पैर की धीमी सी आहट भी उसे सुनाई पड़ जाती थी। वह अपनी ढाल सम्हाल लेता और हमले से बच जाता। तीन महीने पूरे हो गए। हमला करना मुश्किल हो गया। किसी भी हालत में हमला किया जाए--वह हमेशा सावधान होता और रोक लेता।
उसके गुरु ने कहाः एक पाठ तेरा पूरा हो गया। कल से दूसरा पाठ शुरू होगा। और उसने पूछा कि इन तीन महीनों में तुझे क्या हुआ? उस सम्राट ने कहाः दो बातें हुईं। मैं हैरान हो गया। पहले तो मैं डर गया था कि इस लकड़ी की तलवार से चोट पहुंचाने का और परमात्मा से मिलने का क्या वास्ता? क्या संबंध? यह पागल तो नहीं है फकीर? मैं किसी पागल के चक्कर में तो नहीं पड़ गया? लेकिन इन तीन महीनों में मुझे पता चला कि जितना मैं सावधान रहने लगा, उतना ही मैं निर-अहंकारी हो गया। जितना मैं सावधान रहने लगा, उतना ही निर्विचार हो गया। जितना ही मैं होश से जीने लगा, उतना ही मन के विचारों की धारा क्षीण हो गई। क्योंकि मन एक ही साथ दो काम नहीं कर सकता--या तो विचार कर सकता है या जागरूक हो सकता है। या तो अवेयरनेस हो सकती है, या विचार हो सकते हैं। दोनों चीजें एक साथ नहीं हो सकतीं।
इसको थोड़ा देखना। जब विचार होंगे, सावधानी क्षीण हो जाएगी। जब सावधानी होगी, विचार क्षीण हो जाएंगे।
अगर मैं एक छुरी लेकर अभी आपकी छाती पर आ जाऊं, तो विचार एकदम बंद हो जाएंगे। क्योंकि उस खतरे में चित्त पूरा सावधान हो जाएगा कि पता नहीं क्या हो? इस समय विचार करने की सुविधा नहीं है, इस समय तो होश बनाए रखने की जरूरत है कि पता नहीं क्या हो?
एक क्षण में कुछ हो सकता है। तो आप जाग जाएंगे। तीन महीने में उस सम्राट ने कहा कि मैं एकदम जागा हुआ हो गया हूं। विचार शांत हो गए, अहंकार का कोई पता नहीं चलता है। दूसरा पाठ क्या है?
उस वृद्ध फकीर ने कहाः कल रात से ही हमला शुरू होगा। कल तू रात में सोया रहेगा तब भी दो-चार दफे हमले होंगे। अब रात में भी सावधान रहना! उस सम्राट ने कहाः जागने तक भी गनीमत थी। अब यह बात जरा ज्यादा हुई जाती है। नींद में मैं क्या करूंगा? मेरा क्या बस होगा नींद में? वृद्ध ने कहाः नींद में भी बस है, तुझे पता नहीं। सपने भी तू जो देखना चाहता है, वही देखता है। नींद में भी बस है। नींद में भी तेरे भीतर कोई जागा हुआ है और होश में है। चादर सरक जाती है और किसी को नींद में पता चल जाता है कि चादर सरक गई है। एक छोटा सा मच्छर काटने लगता है और नींद में कोई जान जाता है कि मच्छर आ गया है।
एक मां रात में सोती है, उसका बच्चा बीमार है। आकाश में बादल गरजते रहें या प्रधानमंत्रियों के हवाई जहाज उड़ते रहें, उनकी इसे कोई खबर नहीं मिलती। लेकिन बच्चा बीमार है, वह जरा सी आवाज करता है और मां जग जाती है और हाथ फेरने लगती है और पुचकारने लगती है कि बेटे सो जा! कोई भीतर होश से भरा हुआ है कि बच्चा बीमार है।
हम इतने लोग यहां हैं, हम सो जाएं आज रात यहीं, और फिर आधी रात में आकर कोई बुलाने लगे, राम! राम! सारे लोग सोए रहेंगे, किसी को सुनाई नहीं पड़ेगा। लेकिन जिसका नाम राम है, वह आंख खोल देगा और कहेगा, कौन बुलाता है? इस आधी रात में कौन परेशान करता है?
इस आधी रात की निद्रा में भी किसी को पता है कि मेरा नाम राम है। इस नींद में भी कोई होश, कोई कांशसनेस सरकती है भीतर, कोई अंडरकरेंट है, चेतना है, कोई अंतर-धारा है।
उस बूढ़े ने कहाः फिकर मत कर। हम तो चुनौती खड़ी करेंगे। भीतर जो सोया
है वह जागना शुरू हो जाएगा। जागने का एक ही सूत्र हैः चैलेंज! चुनौती! जितनी बड़ी चुनौती भीतर हो, उतना बड़ा जागरण होता है। इसलिए धन्यभागी हैं वे लोग जिनके जीवन में बड़ी चुनौतियां होती हैं। दूसरे दिन से हमला शुरू हो गया।
रात सम्राट सोता और हमला होता। आठ-दस दिन में फिर वही हालत हो गई पहले वाली। हड्डियां-हड्डियां दुखने लगीं। लेकिन एक महीना पूरा होते-होते सम्राट को पता चला कि बूढ़ा ठीक कहता था।

बूढ़े अक्सर ठीक कहते हैं। लेकिन जवान सुनते ही नहीं। और जब तक उन्हें समझ आती है, तब तक वे भी बूढ़े हो जाते हैं। फिर दूसरे जवान उनकी नहीं सुनते। तो सम्राट ने कहाः ठीक ही कहते थे शायद आप! अब नींद में भी उसके हाथ सम्हलने लगे। रात नींद में भी गुरु आता दबे पांव, तो भी नींद में कोई जाग जाता, वह युवक बैठ जाता और कहता कि ठीक है! माफ कीरिए! मैं जाग गया हूं। अब कष्ट मत उठाइए मारने का।
नींद में भी हाथ... रात भर उसका ढाल पर ही बना रहता था। नींद में भी ढाल
उठ जाती। तीन महीने पूरे हुए और उस पर नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया। गुरु ने कहाः क्या हुआ इन तीन महीनों में? दूसरा पाठ पूरा होता है। उस सम्राट ने कहाः बड़ा हैरान हूं। पहले तीन महीनों में विचार खो गया, दूसरे तीन महीनों में सपने खो गए, ड्रीम्स खो गए, रात भर सपना नहीं है। मैं तो सोचता था कि बिना सपने के नींद ही नहीं हो सकती। अब मैं जानता हूं कि सपने वालों की भी कोई नींद होती है। अदभुत शांति छा गई है भीतर! एक सन्नाटा, एक साइलेंस पैदा हो गया है। मैं बड़े आनंद में हूं।
उसके गुरु ने कहाः जल्दी मत कर। बड़ा आनंद अभी थोड़ा दूर है। यह तो केवल आनंद की शुरुआत की झलकें हैं। जैसे कोई आदमी बगीचे के पास पहुंचने लगे, तो ठंडी हवाएं आने लगती हैं, फूलों की थोड़ी-बहुत खुशबुएं हवा में आ जाती हैं। अभी बगीचा आया नहीं, लेकिन बगीचे की खबर आनी शुरू हो जाती है। अभी आनंद मिला नहीं। केवल बाहरी खबरें मिलनी शुरू हुई हैं। कल से तेरा तीसरा पाठ शुरू होगा।
उस युवक ने कहाः दो ही अवस्थाएं होती हैं जागने और सोने की। तीसरा पाठ क्या है?
उस बूढ़े ने कहाः कल से असली तलवार से हमला होगा। अब तक नकली तलवार से हमला चलता था।
वह युवक बोलाः यह भी गनीमत थी कि आप लकड़ी की तलवार से हमला करते थे। यह
तो जरा ज्यादा हो जाएगी बात। असली तलवार से हमला? अगर मैं एक भी बार चूक गया तो जान गई!
उस बूढ़े ने कहाः जब यह पक्का पता हो कि एक भी बार चूका कि जान गई, तब कोई भी नहीं चूकता है। चूकता आदमी तभी तक है जब तक उसे पता चलता है कि चूक भी जाऊं तो कुछ जाने को नहीं। एक बार पता चल जाए कि चूका कि जान गई, तब प्राण अपनी पूरी ऊर्जा से जगते हैं, फिर चूकने का कोई मौका नहीं रह जाता। उस बूढ़े ने कहाः मेरा गुरु था जिसके पास मैं सीखता था। उसने मुझे एक दिन सौ फीट ऊंचे दरख्त पर चढ़ा दिया। वह मुझे दरख्तों पर चढ़ना सिखाता, पहाड़ों पर चढ़ना सिखाता, नदियों में तैरना सिखाता, झीलों में डूबना सिखाता। वह बड़ा अजीब गुरु था। वह कहता थाः जो पहाड़ पर चढ़ना नहीं जानता है, वह जीवन में चढ़ना क्या जानेगा? जो झीलों की गहराइयों में डूबना नहीं जानता, वह प्राणों की गहराइयों में डूबना क्या जानेगा? वह बड़ा अजीब गुरु था। उसने मुझे एक दरख्त पर चढ़ा दिया। मैं नया-नया चढ़ा था। जब मैं सौ फीट ऊपर पहुंच गया और जहां प्राण कंपते थे कि हवा का एक झोंका कहीं जान लेने वाला न बन जाए। पैर का जरा सरक जाना कहीं मौत न बन जाए।
वह गुरु चुपचाप नीचे आंख बंद किए झाड़ के पास बैठा रहा। फिर मैं धीरे- धीरे उतरने लगा। जब मैं जमीन के बिल्कुल करीब आ गया, कोई आठ-दस फीट दूर रह गया, तब वह बूढ़ा जैसे नींद से उठ गया और खड़ा हो गया और कहने लगाः सावधान बेटे! सम्हल कर उतरना। होशियारी से उतरना।
मैंने कहाः पागल हो गए हैं आप? जब जरूरत थी सावधानी की, तब आंख बंद किए सपने देख रहे थे, और अब जब मैं नीचे आ गया हूं, अब अगर गिर भी जाऊं तो कोई खतरा नहीं है, तब आपको होशियारी की याद दिलाने का ख्याल आया?
वह बूढ़ा कहने लगाः मैं अपने अनुभव से जानता हूं, जब तू सौ फीट ऊपर था,
तब किसी को सावधान करने की कोई जरूरत न थी। तू खुद ही सावधान था। और अभी- अभी मैंने देखा है कि जैसे-जैसे जमीन करीब आने लगी है, तू गैर-सावधान होना शुरू हो गया। नींद पकड़ गई है तुझे। तो मैंने चिल्लाया कि सावधान! क्योंकि मैंने जीवन में देखा है लोग ऊंचाइयों से कभी नहीं गिरते, नीचाइयों पर गिर जाते हैं और मर जाते हैं। मैंने आज तक जिंदगी में देखा ही नहीं कि कोई आदमी

कभी ऊंचाइयों से गिरा हो। लोग नीचाइयों में गिरते हैं और मर जाते हैं।
इसलिए तुझे सावधान कर दिया।
उस बूढ़े ने कहाः कल से असली तलवार आती है। और कल से असली तलवार आ गई।
लेकिन बड़ा हैरान हुआ वह सम्राट! लकड़ी की तलवार पर तो बहुत चोट उसके शरीर पर लगी थी, लेकिन असली तलवार से तीन महीने में एक भी चोट नहीं मारी जा सकी।
तीन महीने पूरे होने को आ गए। उसका मन एक शांति का सरोवर हो गया। उसका अहंकार कहीं दूर छूट गया किसी रास्ते पर, पता नहीं कहां रह गया! जैसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र छूट जाते हैं या सांप अपनी केंचुल को छोड़ कर आगे बढ़ जाता है, वह कहीं छोड़ आया है पीछे उसको। याद भी नहीं रहा कि कभी मैं भी था। इतनी शांति हो गई है कि वहां कोई लहर भी नहीं उठती उस झील में।
तीन महीने पूरे होने को आ गए हैं। आज आखिरी दिन है। कल वह विदा हो जाएगा। उसके मन में ख्याल आया--सुबह-सुबह सूरज निकला है, वह बैठा है झोपड़े के बाहर--उसका गुरु काफी दूरी पर एक दरख्त के नीचे बैठ कर कोई किताब पढ़ रहा है। अस्सी साल का वृद्ध। उसके मन में ख्याल आया है--इस बूढ़े ने नौ महीने तक मुझे एक क्षण भी आलस्य में नहीं जाने दिया, एक क्षण भी प्रमाद नहीं करने दिया। हमेशा जगाए रखा। सावधान रखा। कल तो मैं विदा हो जाऊंगा। यह गुरु भी उतना सावधान है या नहीं, यह भी तो मैं देख लूं? तो उसने सोचा कि उठाऊं तलवार और आज उस बूढ़े पर पीछे से हमला कर दूं। मुझे भी तो पता चल जाए कि हमी को सावधान किया जाता है या ये सज्जन खुद भी सावधान हैं? उसने इतना सोचा ही था, सिर्फ सोचा ही था, अभी कुछ किया नहीं था। अभी सिर्फ सोचा था, बस सोचा था और उधर गुरु चिल्लाया उस झाड़ के नीचे से कि बेटा, ऐसा मत करना, मैं बूढ़ा आदमी हूं! वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहाः मैने कुछ किया नहीं, मैंने केवल सोचा है।
तो उसे बूढ़े ने कहाः तू थोड़े दिन और ठहर जा। जब चित्त बिल्कुल शांत हो जाता है और मौन हो जाता है, जब अहंकार से बिल्कुल विदा हो जाती है, और जब विचार शून्य और शांत हो जाते हैं तब दूसरों के पैरों की ध्वनि ही नहीं सुनाई पड़ती, दूसरों के चित्त की पग-ध्वनियां भी सुनाई पड़ने लगती हैं। तब दूसरों के विचारों के पैर भी सुनाई पड़ने लगते हैं। विचार भी सुनाई पड़ने लगते हैं दूसरे के।
हम तो ऐसे अंधे हैं कि हमें दूसरों के कृत्य भी नहीं दिखाई पड़ते। विचार सुनाई पड़ना तो बहुत दूर की बात है।
लेकिन उस बूढ़े ने कहा था, जिस दिन इतना शांत हो जाता है चित्त, इतना जागरूक, उस दिन ही वह जो अदृश्य है, उसकी झलक मिलती है। उस परमात्मा के पैर सुनाई पड़ने लगते हैं, जिसके कोई पैर नहीं हैं। उस परमात्मा की वाणी आने लगती है, जिसकी कोई वाणी नहीं है। उस परमात्मा का स्पर्श मिलने लगता है, जिसकी कोई देह नहीं। सब तरफ फिर वह मौजूद हो जाता है।
जिस दिन हमारे भीतर वह रिसेप्टिविटी, वह ग्राहकता उत्पन्न होती है शांति की, उसी दिन वह सब तरफ मौजूद हो जाता है। फिर वृक्ष के पत्तों में वही है, राह के पत्थरों में वही है, सागर की लहरों में भी, आकाश के बादलों में भी, आदमियों की आंखों में भी, पशु-पक्षियों के प्राणों में भी--फिर सबमें वही है। जिस दिन भीतर वह रिसेप्टिविटी, वह जीवन की पग-ध्वनि सुनने की ग्राहकता उपलब्ध हो जाती है, वह पात्रता उपलब्ध हो जाती है।
पता नहीं उस सम्राट का फिर क्या हुआ। पता नहीं उस बूढ़े फकीर का फिर क्या हुआ। लेकिन मुझे और आपको, उससे प्रयोजन भी क्या है? जहां उनकी कहानी खतम होती है, अगर वहीं आपकी कहानी शुरू हो जाए, तो बात पूरी हो जाती है। क्या आप भी अपने भीतर इतने जागने का सतत श्रम करने को तत्पर हैं? अगर हां, तो जीवन की संपदा आपकी है। अगर हां, तो परमात्मा खुद आपके द्वार चला आएगा। आपको उसके द्वार जाने की जरूरत नहीं। और यह बात कितनी ही कठिन मालूम पड़ती हो, जो लोग चलने के आदी नहीं होते, उन्हें यात्राओं की लंबाइयां बहुत बड़ी दिखाई पड़ती हैं। उन्हें डर लगता है, एक ही, छोटे से तो पैर हैं हमारे पास, हजारों मील की यात्रा हम कैसे पूरी कर सकेंगे? लेकिन अगर एक कदम भी उठाने के लिए वे तैयार हो जाएं, तो हर कदम उठाया गया आने वाले कदम के लिए भूमि बन जाता है, बल बन जाता है, शक्ति बन जाता है। और छोटे से कदमों से आदमी पूरी

पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है। और छोटे से मन की सामर्थ्य, छोटे से प्राणों की सावधानी से, थोड़े से हृदय की शांति से मनुष्य परमात्मा की परिक्रमा भी कर सकता है।
इन तीन दिनों में तीन छोटी सी बातें मैंने आपसे कहीं--आनंद का भाव। अहोभाव। अज्ञान का बोध। और आज आपसे कहता हूंः स्वयं के जीवन-कृत्यों, विचारों के प्रति जागरूकता।
तीन खूंटियां मैंने आपसे कहीं। थोथे ज्ञान की खूंटी है, दुखपूर्ण जीवन को देखने की वृत्ति की खूंटी है, और अस्मिता की, अहंकार की, ईगो की खूंटी है। इन तीन से जो मुक्त हो जाता है उसकी नौका परमात्मा के सागर की यात्रा पर निकल जाती है। फिर उसे नाव खेनी भी नहीं पड़ती। वे पागल युवक रात भर नाव खेते रहे!
रामकृष्ण कहते थेः एक बार नाव की जंजीर तो खोल दो। एक बार नाव का पाल
तो खोल दो। फिर तो उसकी हवाएं नाव को ले जाएंगी, गंतव्य तक पहुंचा देंगी, मंजिल तक पहुंचा देंगी। फिर तुम्हें पतवार भी नहीं चलानी होगी। उसकी हवाएं तुम्हें ले जाएंगी। उसकी हवाएं ले जाने को हमेशा खड़ी हैं। लेकिन हमारी नाव बंधी है, हमारा पाल बंधा है। हम व्यर्थ ही श्रम किए जाते हैं और व्यर्थ हुए जाते हैं।
ये थोड़ी सी बातें तीन दिनों में मैंने कहीं। हो सकता है कोई बात आपके प्राणों के किसी कोने में बीज बन जाए और अकुंरित हो उठे और कोई वृक्ष बन जाए। वह वृक्ष आपको भी छाया देगा और उन सबको भी, जो आपके निकट हैं। वैसा छायादार वृक्ष बन जाना ही धार्मिक जीवन को उपलब्ध कर लेना है।
मेरी बातों को इतनी शांति से तीन दिन सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में एक छोटी सी बात, जो श्री दुर्लभ जी भाई खेतानी ने कही, उसके संबंध में दो शब्द कह कर मैं अपनी बात पूरी कर देता हूं।
देश को, समाज को, मनुष्य को, जैसा वह आज है, उसे देख कर जिस आदमी के हृदय में आंसू न भर जाते हों, वह आदमी या तो मर चुका है या मरने के करीब है। जो आदमी भी जीवित है, वह आज के देश की, आज के समाज की, आज के मनुष्य की दशा को देख कर रोता होगा। उसकी हंसी झूठी होगी, उसकी रातें उसके तकियों को उसकी आंखों के आंसुओं से गीला कर देती होंगी। मुझे पता नहीं आपका, लेकिन मैं अंधकार में अक्सर रो लेता हूं। आदमी जैसा है उसे देख कर सिवाय रोने के और कुछ ख्याल भी नहीं आता। लेकिन रोने से कुछ भी नहीं हो सकता है। कुछ करना जरूरी है। और अगर हम कुछ नहीं कर सके गिरते हुए चरित्र में खोती हुई आत्मा के लिए, पूरे देश की प्रतिभा नष्ट होती हो, पूर प्राण बिखरते जाते हों, आदमी रोज नीचे से नीचे उतरता जाता हो, और अगर हम कुछ न कर सके, तो आने वाले भविष्य की अदालत में हम अगर अपराधी ठहराए जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। हम अपराधी हैं। हम आने वाले जीवन के लिए क्या छोड़ जाते हैं? हम आने वाले बच्चों और पीढ़ियों के लिए क्या निर्मित कर रहे हैं? हम उन्हें कौन सा जीवन दे रहे हैं? हम उन्हें कौनसा मार्ग दे रहे हैं? हम उन्हें कौनसा संकल्प दे रहे हैं? हम उन्हें कौनसी आशा दे रहे हैं? कौनसा भविष्य दे रहे हैं? कौनसी डेस्टिनी दे रहे हैं?
हम कुछ भी नहीं दे रहे हैं। हम कुछ बीमारियां दे रहे हैं। कुछ रुग्णताएं दे रहे हैं। कुछ पागलपन दे रहे हैं। हम बच्चों को विक्षिप्त बनाने की दिशा में अग्रसर कर रहे हैं।
इधर जितना यह सब जब मैं देखने लगा और देश के कोने-कोने में गया और लाखों लोगों की आंखों में झांका, और एक भी आंख में मुझे आनंद की कोई झलक न मिली; और एक भी प्राण में मुझे कोई संगीत गूंजता हुआ सुनाई नहीं पड़ा; और एक भी व्यक्ति मुझे ऐसा नहीं मिला जिसे हम कह सकें कि उसे जीवन को पाकर वह धन्य हो गया है।
तो मेरी रातें बहुत दुख और अंधेरे और आंसुओं से भर गई हैं। और इधर मुझे लगने लगा कि कुछ किया जाना जरूरी है। चुपचाप राह के किनारे खड़े होकर देखना खतरनाक है। और जो आदमी चुपचाप राह के किनारे खड़े होकर देखता है, वह भी भागीदार है, वह भी हिस्सेदार है, वह भी... अगर गलत हो रहा है तो जिम्मेवारी उसकी भी होगी। गए वे दिन जब संन्यासी दूर खड़े हो जाते और कहते

कि जीवन से हमें क्या लेना-देना। इन्हीं संन्यासियों ने, जीवन को नहीं बदला जा सका अगर, तो इन्हीं संन्यासियों पर उसकी जिम्मेवारी चली जाएगी। वे बदल सकते थे जिंदगी को, अगर वे कहते कि हमें जिंदगी से बहुत कुछ लेना- देना है, हम जिंदगी को गलत देखने को राजी नहीं हैं। हम जीएंगे तो जिंदगी को ठीक बनाने के प्रयास में जीएंगे।
इधर एक संकल्प, इधर कोई परमात्मा की आवाज जोर से मेरे मन में कहने लगी
कि मुझमें जो बन सके थोड़ा वह करना चाहिए। हो सकता है एक ही आदमी बदल सके। तो बहुत बड़ी बात हो जाएगी। अंधेरे घर में एक भी दीया जल जाए तो बहुत बड़ी बात हो जाती है। फिर इस दिशा में यह थोड़ा सा सोचा कि कोई एक केंद्र हो और वहां मनुष्य के जीवन के परिवर्तन की कला, आर्ट ऑफ लिविंग पर, जीवन को बदीलने के विज्ञान पर, जीवन को बदलने की दिशा में कुछ किया जा सके। बहुत कुछ किया जा सकता है। आदमी बिल्कुल नया किया जा सकता है। आदमी के भीतर बिल्कुल नई चेतना को जन्म दिया जा सकता है। क्योंकि मेरा ख्याल यह है कि जब गलत हो सकता है आदमी, तो ठीक भी हो सकता है, क्योंकि अगर वह ठीक न हो सकता हो, तो फिर गलत भी नहीं हो सकता है। जो आदमी बीमार हो सकता है वह स्वस्थ भी हो सकता है। अगर स्वस्थ न हो सकता हो, तो फिर बीमारी की भी कोई संभावना नहीं रह जाती।
आदमी गलत है, सब भांति गलत है। वह ठीक भी हो सकता है। इस दिशा में मैं क्या कर सकता हूं? मेरी आवाज अकेली है। लेकिन फिर बहुत मित्रों को पास पाकर मुझे ऐसा ख्याल हुआ कि आवाज अकेली नहीं है, बहुत से हृदयों की धड़कन उसके साथ हो सकती है। बहुत से लोग उसमें सहभागी और साझेदार हो सकते हैं। और एक जीवन-क्रांति का पूरा आंदोलन, जीवन-क्रांति का एक पूरा विश्वविद्यालय, और मुल्क के कोने-कोने तक आदमी को बदलने के लिए चुनौती और प्रेरणा देने वाली कोई हवा बहाई जा सकती है। तो उस हवा के बहाने में आपका भी साथ मिले, इसके लिए निवेदन और प्रार्थना करता हूं।
वह साथ आपके पैसे का उतना नहीं है। पैसे का कोई भी बड़ा मूल्य नहीं है।
वह आपके प्रेम का साथ है। अगर आप हृदय से साथ हैं, तो पैसा उसके लिए बहुत इकट्ठा हो जाएगा। वह कभी सवाल ही नहीं है। और अगर आप हृदय से साथ नहीं हैं, तो कितना ही पैसा इकट्ठा हो जाए, उसका दो कौड़ी कोई मूल्य नहीं है।
तो मैं आपके प्रेम के लिए और आपके साथ और शुभकामना के लिए प्रार्थना करता हूं। उस शुभकामना के पीछे और सब अपने आप चला आता है। अगर आपको लगता है, अगर आपके प्राणों में कहीं ऐसा प्रतीत होता है, कहीं हृदय में ऐसी कोई आवाज उठती है कि इस देश के लिए, समाज के लिए, मनुष्य के लिए कुछ किया जाना जरूरी है, कोई संकल्प पैदा होना जरूरी है, कोई आंदोलन, कोई हवा, मनुष्य की आत्मा को जगाने के लिए कोई तीव्र विचार देश के कोने-कोने तक गूंज जाना जरूरी है। अगर ऐसा प्रतीत होता है तो प्रतीत होने के बाद अगर आप दूर खड़े रहते हैं, तो मुल्क के उन हत्यारों में आपकी भी गिनती होगी जो चारों तरफ मुल्क की हत्या किए जा रहे हैं। उसमें राजनीतिज्ञ सम्मिलित हैं, धर्मगुरु सम्मिलित हैं, और न मालूम किस-किस तरह के लोग सम्मिलित हैं। उसमें सब तरह के लोग सम्मिलित हैं मुल्क की हत्या करने में।
उस मुल्क को बड़ी हत्या से बचाने के लिए आपका साथ, आपकी मैत्री, आपके प्रेम की मैं मांग करता हूं। और यह मांग भीख नहीं है। यह मांग मैं अपना अधिकार मान लेता हूं। जिन्हें मैं प्रेम करता हूं उनसे मैं अधिकार पूर्वक मांग सकता हूं। और जो मैं मांगूंगा उसके लिए आप देंगे तो मैं आपको धन्यवाद भी देने वाला नहीं हूं। धन्यवाद आपको ही मुझे देना पड़ेगा कि मैं उसे लेने को राजी हो गया हूं। पैसे का हिसाब-किताब तो दुर्लभजी भाई रखेंगे, लेकिन मैं आपका हिसाब-किताब रखना चाहूंगा।
तो अगर इस संकल्प में, इस महा संकल्प में, शुभ संकल्प में आपके मन की धड़कन साथ है, तो मैं चाहूंगा कि आप अपने दोनों हाथ उठा कर मुझे बल दे दें कि आप मेरे साथ हैं। जो भी साथ हैं वे अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लें। वह उनके प्रेम का साथ है--न उनके पैसे का, न उनकी किसी और शक्ति का, उनके हृदय का और उनकी आत्मा का। मैं आपको धन्यवाद देता हूं और प्रार्थना करता हूं कि आपने

जो संकल्प जाहिर किया है वह संकल्प मेरा या आपका नहीं, परमात्मा का होगा, और उससे कुछ परिणाम निकल सकते हैं।

अंत में तीन दिनों तक मेरे पास बैठ कर इतने प्रेमपूर्ण, इतनी शांति से मेरी बातों को सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रह प्रकट करता हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन क्रांति की दिशा
चौथा प्रवचन

मैं कौन हूं?

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक गांव में एक आदमी पागल हो गया था, वह जगह-जगह खड़े होकर पूछने लगा था
कि मैं कौन हूं? एक ही बात पूछने लगा था कि मैं कौन हूं? सारे गांव के लोगों ने समझ लिया था कि वह पागल हो गया है। मैं भी उस गांव में गया था। उस आदमी को मैंने भी चिल्लाते सुना कि मैं कौन हूं? दिन में, रात में, सुबह-सांझ, मकान में, सड़क पर, बाजार में वह आदमी यही चिल्लाता घूमता था कि मैं कौन हूं? कोई मुझे बता दे कि मैं कौन हूं?
मैंने लोगों से पूछाः इसे क्या हो गया है? उन्होंने कहाः यह आदमी पागल
हो गया है, क्योंकि इसे यह भी पता नहीं है कि यह कौन है। मैंने उन लोगों से कहाः अगर पागल होने का यही लक्षण है कि जिसे पता न हो कि वह कौन है, तो फिर सभी मनुष्य पागल हैं। फिर पूरी मनुष्य-जाति ही पागल है।
लेकिन अगर सभी लोग पागल हों, तो पता चलना बहुत कठिन हो जाता है कि कोई पागल है। एक आदमी पागल हो, तो पता पड़ जाता है। और सभी लोग एक ही बीमारी से ग्रसित हो जाएं, तो पता चलना बहुत कठिन हो जाता है।
आदमियत बुनियाद से ही अस्वस्थ है। आदमी जन्म से ही विक्षिप्त है। क्योंकि जिसे यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, उसे और कुछ भी पता नहीं हो सकता है। फिर इस अज्ञान में किए गए सभी कर्म, फिर इस अज्ञान में की गई सारी यात्रा ही, अगर और गहरे से गहरे पागलपनों में ले जाती हो तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन जैसा मैंने कहा, अगर सभी लोग एक ही बीमारी से घिर जाएं, तो पता चलना कठिन है कि कोई बीमार है।
एक गांव में ऐसा हुआ था, एक जादूगर आया और उसने गांव के कुएं में कोई मंत्र फेंका और कहा कि इस कुएं का पानी जो कोई भी पीएगा वह पागल हो जाएगा।
उस गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं था और एक सम्राट का कुआं था।
सारे गांव को, उस कुएं का पानी पीना पड़ा। मजबूरी थी, कोई रास्ता न था।
प्यास लगे और अगर पागल भी होना पड़े तो भी पानी तो पीना ही पड़ेगा।
सांझ होते-होते सारा गांव पागल हो गया। सिर्फ सम्राट बच गया, उसका वजीर बच गया, उसकी रानी बच गई। सम्राट बहुत प्रसन्न था कि सौभाग्य है हमारा कि हमारे घर में अलग कुआं है। लेकिन सांझ होते-होते उसे पता चला कि सौभाग्य नहीं, यह दुर्भाग्य है। क्योंकि जब सारा गांव पागल हो गया, तो गांव में जगह-जगह यह चर्चा होने लगी कि मालूम होता है राजा पागल हो गया। और शाम होते-होते सारे गांव के लोग महल के सामने इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा, पागल राजा को अलग करना जरूरी है। क्योंकि पागल राजा से कैसे देश चलेगा।
राजा अपनी छत पर खड़ा घबड़ाने लगा। उसके सैनिक भी पागल हो गए थे, उसके पहरेदार भी पागल हो गए थे, उसके रक्षक भी पागल हो गए थे। और वे सभी पागल यह कह रहे थे कि सम्राट पागल हो गया है। हमें कोई स्वस्थ आदमी चुनना पड़ेगा। सम्राट ने अपने वजीर को कहाः कोई रास्ता है बचने का? कोई मार्ग है? उस वजीर ने कहाः हम पीछे के रास्ते से भाग चलें और उस कुएं का पानी पी लें जिस कुएं का पानी इन सबने पीया है। इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है।
सम्राट भागा गया और उसने उस कुएं का पानी पी लिया। फिर उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया और बड़ा उत्सव हुआ। लोग नाचे और उन्होंने गीत गाए और भगवान को धन्यवाद दिया कि सम्राट का मस्तिष्क ठीक हो गया। मनुष्य-जाति जन्म से ही कुछ विकृत है। आदमी का अस्वास्थ्य जैसे उसके साथ है। स्वस्थ होना एक घटना है। अस्वस्थ होना जैसे स्वाभाविक है। मस्तिष्क के लिए, मनुष्य की चेतना के लिए अगर यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, तो यह विक्षिप्तता का ही लक्षण होगा। आत्म-बोध मनुष्य के स्वास्थ्य की, आत्म-बोध मनुष्य के चेतना के स्वस्थ होने का पहला लक्षण है। और आत्म-अबोध मनुष्य के विक्षिप्त होने का लक्षण है।

धर्म को मैं न तो पूजा मानता हूं, न प्रार्थना। न धर्म को मैं कोई शास्त्र मानता हूं, न कोई फिलॉसफी। धर्म मनुष्य के इस आत्मिक अस्वास्थ्य का उपचार है। धर्म चिकित्सा है। मनुष्य की वह जो बुनियादी विक्षिप्तता है, उसका इलाज है, उसके ठीक करने की विधि है। लेकिन मनुष्य स्वयं को जान क्यों नहीं पाता है? और अगर हम यह न समझ पाएं कि मनुष्य स्वयं को क्यों नहीं जान पाता है, तो आत्मबोध की कोई यात्रा नहीं की जा सकती है।

और संभावना तो इस बात की है कि हम जो भी करते हैं जीवन में, वह सब आत्म-बोध को छिपाने का कारण बनता है, उघाड़ने का नहीं। स्वयं को जानने की दिशा में हमारे कोई प्रयास ही नहीं हैं। और जिन प्रयासों को हम स्वयं को पाने के प्रयास समझते हैं, वे और भी स्वयं के विस्मरण की विधि बनते हैं।

हम अपने को जानते हैं उतनी ही गहराई तक जितने गहरे हमारे वस्त्र होते हैं। वस्त्रों से ज्यादा गहरा हमारा आत्म-परिचय नहीं है। वस्त्र बहुत प्रकार के हो सकते हैं। जो कपड़े हम शरीर पर पहने होते हैं वे भी हमारे वस्त्र हैं, जो नाम और पद हम अपने मन में लिए होते हैं वे भी हमारे वस्त्र हैं, जो चेहरे, जो अभिनय हम ओढ़े रहते हैं वे भी हमारे वस्त्र हैं। हम अपने संबंध में जो भी जानते हैं वह अपने संबंध में नहीं केवल अपने वस्त्रों के संबंध में है। और कोई हमारे वस्त्र छीन ले, तो हम इसी क्षण पागल हो जाएंगे। क्योंकि हमें भूल जाएगा यह ठिकाना, यह पता कि हम कौन थे?

एक अदभुत व्यक्ति हुआ है, वह कुछ अपने ही किस्म का व्यक्ति होगा। उसका नाम, वह एक फकीर था, उसका नाम था, मुल्ला नसरुद्दीन। वह एक रात एक सराय में ठहरा। सराय भरी हुई थी और सराय में कोई कमरा खाली न था। सराय के मालिक से उसने बहुत प्रार्थना की कि रात बहुत सर्द है और बाहर मैं कैसे रह सकूंगा? मुझे किसी के भी कमरे में ठहर जाने दें। मैं किसी के साथ ठहर जाऊंगा। एक आदमी को राजी किया गया और नसरुद्दीन उस आदमी के साथ ठहरा दिया गया।

वह आदमी अपने वस्त्र निकाल कर बिस्तर पर सो गया, लेकिन नसरुद्दीन अपने जूते, अपनी पगड़ी, अपना कोट पहने हुए बिस्तर पर सो गया। वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या इस आदमी को सोने का ढंग भी पता नहीं है। जूते और पगड़ी और कोट सब पहने हुए बिस्तर पर सो गया है। पर उसने कुछ कहना ठीक न समझा। अजनबी से कुछ कहना ठीक भी न था, अपरिचित से कुछ कहना ठीक भी न था। लेकिन रात गहरी होने लगी और यह मुल्ला नसरुद्दीन करवट बदलने लगा, लेकिन नींद का कोई पता नहीं। इसकी नींद न लगे। इसके करवट के कारण वह दूसरा आदमी भी नहीं सो पा रहा था। आखिर उसने कहा कि महानुभाव, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, आप नहीं सो सकेंगे, जब तक आप जूते और पगड़ी और कपड़े नहीं उतारते।

नसरुद्दीन ने कहाः सोच तो मैं भी यही रहा हूं कि नहीं सो सकूंगा। अगर मैं अकेला होता तो मैं कपड़े निकाल देता। लेकिन तुम भी कमरे के भीतर हो, इसलिए मैं कपड़े नहीं निकाल सकता हूं।

उस आदमी ने कहाः मतलब? नसरुद्दीन ने कहाः मतलब यह है कि अगर सारे कपड़े निकाल कर मैं सो गया, तो सुबह मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं कौन हूं और तुम कौन हो? इन कपड़ों से ही अपने को पहचानता हूं कि मैं कौन हूं। अकेला होता तो मैं कपड़े निकाल कर सो जाता। सुबह उठ कर पहचान लेता कि मैं ही होऊंगा, क्योंकि और कोई तो मौजूद नहीं है। लेकिन अभी सब कपड़े निकाल दूंगा तो सुबह पहचान कैसे पाऊंगा कि कौन कौन है?

नसरुद्दीन आदमी के ऊपर मजाक कर रहा था, लेकिन वह अजनबी नहीं समझ सका। उसने कहाः तो फिर एक काम करो। हमसे पहले जो लोग इस कमरे में ठहरे होंगे उनके बच्चे कुछ गुब्बारे छोड़ गए थे, तो उसने कहा कि कपड़े निकाल लो और एक गुब्बारा अपने पैर से बांध लो। तुम्हें पता चल जाएगा सुबह कि गुब्बारा बंधा हुआ आदमी तुम हो।

नसरुद्दीन ने कहाः यह बात समझ में पड़ती है। उसने सारे कपड़े निकाल दिए और गुब्बारा पैर से बांध कर वह सो गया और खर्राटे लेने लगा।

उस दूसरे आदमी को मजाक सूझी, उसने जो नसरुद्दीन सो गया, तो उसका गुब्बारा निकाल कर अपने पैर में बांध लिया और वह भी सो गया।

चार बजे के करीब नसरुद्दीन उठा और दूसरे आदमी को हिलाने लगा और उसने कहा कि मुझे डर था वही भूल हो गई। गुब्बारा तुम्हारे पैर में बंधा है, तुम

मुल्ला नसरुद्दीन हो, तो फिर मैं कौन हूं? यह मुश्किल हो गई। मुल्ला नसरुद्दीन ने गुब्बारा बांधा था, वह तुम हो। अब मैं कौन हूं? उस आदमी ने समझा होगा मुल्ला नसरुद्दीन पागल है। लेकिन नसरुद्दीन सारे आदमियों के ऊपर व्यंग्य कर रहा था, सारी आदमियत पर मजाक कर रहा था।
हम भी अपने को किन बातों से पहचानते हैं? गुब्बारों से पहचानते हैं जो हमारे हाथ और पैरों में बांध दिए गए हैं। कोई आदमी नाम लेकर पैदा नहीं होता, मां-बाप एक गुब्बारा पैर में बांध देते हैं कि तेरा यह नाम है, तू राम है, तू कृष्ण। और जिंदगी भर वह यही पहचानता रहता है कि मैं राम हूं और मैं कृष्ण हूं। और कहीं उसका यह नाम का गुब्बारा अलग कर लिया जाए, तो वह खड़ा हो जाएगा पागल की तरह पूछेगा कि मैं कौन हूं?
नाम कोई सच्चाई नहीं है, एक झूठ है जो आदमी की पहचान के लिए चिपका दिया जाता है। लेकिन फिर नाम ही सच्चाई हो जाती है, वही हमारा रिकग्नीशन, वही हमारी प्रतिभिज्ञा हो जाती है, वही हमारी पहचान हो जाती है। और दूसरे हमें उससे पहचानते, यह तो ठीक था, हम भी अपने को उसी नाम से पहचानने लगते हैं। ठीक थी यह बात कि दूसरे हमें हमारे नाम से पहचान लेते। जिंदगी में काम चलाने के लिए यूटिलिटेरियन, उपयोगिता है नाम की, दूसरे उससे हमें पहचान लेते हैं। लेकिन भूल तो यहां हो जाती है कि फिर हम भी अपने को उसी नाम से पहचानते हैं जो बिल्कुल झूठा और कल्पित है।
किसी आदमी का कोई भी नाम नहीं है, लेकिन उसी नाम के आस-पास जो बिल्कुल इमेजिनेशन है, जो बिल्कुल कल्पना है, हम अपने सारे व्यक्तित्व को गढ़ते हैं, खड़ा करते हैं, बड़ा करते हैं, सारा भवन बनाते हैं और इसको हम जीवन कहते हैं। यह जीवन अगर पूरा झूठा हो तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि एक झूठ के आस-पास बुना जाता है, इर्द-गिर्द बनाया जाता है। और नाम के लिए हम पागल रहते हैं और पागल होते हैं और पागल की तरह मर जाते हैं; उस नाम के लिए, जिससे हमारा दूर का भी कोई नाता नहीं था; जिससे हमारा कोई भी संबंध नहीं था; जो हमारी आत्मा नहीं थी; जो हमारा व्यक्तित्व न था; जो हमारी आथेंटिक बीइंग न थी। जो हमारी प्रामाणिक सत्ता न थी। उस नाम के लिए हम जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं। उन बच्चों की तरह शायद जो नदी की रेत पर जाते हैं और हस्ताक्षर कर आते हैं और बड़े खुश लौट आते हैं। और उन्हें पता भी नहीं कि वे लौटे भी नहीं हैं कि हवाओं ने हस्ताक्षर मिटा दिए हैं रेत पर उनके। और नदी का बहाव आया है और उनके सब नाम बहा कर ले गया है।
लेकिन बच्चों पर हम हंसते हैं और बच्चों से शायद हम कहेंगे कि पागलो, रेत पर हस्ताक्षर नहीं किए जाते। रेत तो मिट जाती है, हवाएं रेत को मिटा देती हैं। लेकिन बूढ़े भी क्या करते हैं, चट्टानों पर हस्ताक्षर करते हैं और शायद सोचते हैं कि चट्टान और रेत में कोई बहुत फर्क है। रेत से चट्टान बनती है, चट्टान फिर रेत हो जाती है। रेत कभी चट्टान रही है, चट्टान कभी रेत थी। और उस पर हस्ताक्षर किए जाते हैं और जीवन भर सोचते हैं कि हमने कुछ उपलब्ध कर लिया है, क्योंकि हमने कहीं हस्ताक्षर कर दिए हैं। हमने कहीं वह नाम खोद दिया है जो मेरा था। और नाम का मेरे "मैं" से कोई भी संबंध नहीं है, कोई भी वास्ता नहीं है।
नाम के बोध को हम आत्म-बोध समझ लेते हैं। नाम का बोध आत्म-बोध नहीं है। इससे ज्यादा दूरी पर और फासले पर दो चीजें नही हो सकतीं। नाम आत्मा से उतने ही दूर है जितनी दूर जमीन से आसमान होगा। इनके बीच कोई संबंध नहीं है, कोई नाता नहीं है। लेकिन इस नाम के आस-पास हम वस्त्रों को इकट्ठा करते हैं, इकट्ठा करते हैं। विशेषता के वस्त्र हैं, पदों के वस्त्र हैं, प्रतिष्ठाओं के वस्त्र हैं, राष्ट्रपतियों के वस्त्र हैं, और हम इकट्ठे करते चले जाते हैं, इकट्ठे करते चले जाते हैं। इस झूठे नाम के आस-पास जो वस्त्रों की कतार और भीड़ इकट्ठी हो जाती है, वही मनुष्य का अहंकार बन जाता है, वही उसकी ईगो है।
हमें अहंकार का तो बोध है, लेकिन आत्मा का कोई बोध नहीं है। और जब तक अहंकार का बोध है तब तक आत्मा का बोध हो भी नहीं सकता है।
आत्म-बोध की दिशा में अगर कोई सबसे बड़ी बाधा है, तो वह अहंकार है। या जैसा मैंने पहले कहा, आदमी की विक्षिप्तता में, आदमी की मैडनेस में, उसकी

इंसेनिटी में, अगर सबसे बड़ी कोई चीज किसी कुएं का पानी काम कर रहा है, तो वह अहंकार के कुएं का पानी है। वह उसे पागल किए देता है, वह उसे पागल बनाए चले जाता है। वह उसे विक्षिप्त से विक्षिप्त कर देता है। क्योंकि असत्य के इर्द-गिर्द जो अपने व्यक्तित्व को बनाएगा, वह विक्षिप्त ही हो सकता है, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वास्थ्य उपलब्ध होता है सत्य की परिधि पर। अस्वास्थ्य उपलब्ध होता है असत्य की परिधि पर। और अहंकार से बड़ा असत्य कुछ भी नहीं, वह सबसे बड़ी फॉलसिटी है, क्योंकि वह है ही नहीं।
मैंने सुना है, एक महल के पास पत्थरों का एक छोटा सा ढेर लगा था, और कुछ बच्चे वहां से खेलते निकले थे, और एक बच्चे ने एक पत्थर को उठा कर महल की तरफ फेंका। पत्थर ऊपर उठने लगा। पत्थरों के पास पंख नहीं होते हैं, लेकिन उड़ने की इच्छा उनमें भी होती है। आदमी के पास पंख नहीं होते, आदमी की इच्छा भी उड़ने की होती है। पत्थरों की इच्छा भी उड़ने की होती है, आकाश छूने की होती है। लेकिन पत्थर नीचे पड़े रहते हैं, उड़ नहीं पाते। और जब एक पत्थर ऊपर उड़ने लगा, तो उसने नीचे पड़े हुए पत्थरों को तिरस्कार से देखा और कहा, मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। नीचे के पत्थर विरोध भी नहीं कर सकते थे, इनकार भी नहीं कर सकते थे। यह बात सच थी वह पत्थर जा रहा था। लेकिन एक छोटा सा फर्क उस पत्थर ने कर दिया था। वह फेंका गया था। लेकिन उसने कहा, मैं जा रहा हूं। उसने यह नहीं कहा कि मैं फेंका गया हूं, उसने कहा, मैं जा रहा हूं। और आत्मा और अहंकार का फासला शुरू हो गया। अगर वह कहता कि फेंका गया हूं, तो शायद वह आत्म-बोध को उपलब्ध हो जाता। लेकिन उसने कहा, मैं जा रहा हूं। और वह अहंकार को इकट्ठा करना शुरू कर दिया। जहां उसका कोई कृत्य न था वहां उसने कहा कि मैं जा रहा हूं। नीचे के पत्थर इनकार भी नहीं कर सकते थे।
वह पत्थर ऊपर उठा और जाकर महल के कांच से टकराया, कांच चकनाचूर हो गया। अब यह स्वाभाविक ही है कि पत्थर कांच से टकराए तो कांच चकनाचूर हो जाए। इसमें पत्थर कांच को चकनाचूर करता नहीं है, कांच चकनाचूर हो जाता है, इट जस्ट हैपंस। इसमें कोई पत्थर कांच को तोड़ नहीं देता, कांच और पत्थर टकराते हैं तो कांच टूट जाता है। लेकिन पत्थर ने कहा कि पागल कांच, तू अखबार नहीं पढ़ता है, तू रेडियो नहीं सुनता है, मैंने कितनी बार यह खबर नहीं की है कि मेरे रास्ते में कोई भी न आए, नहीं तो मैं चकनाचूर कर दूंगा। अब पछताओ अपने भाग्य पर। चकनाचूर हो गए हो। पत्थर के रास्ते में जो भी आएगा चकनाचूर हो जाएगा। और याद रखो, मैं कोई साधारण पत्थर नहीं हूं, मैं आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। कांच के टुकड़े क्या कह सकते थे? बात सच ही थी, वे चकनाचूर हो गए थे। लेकिन पत्थर झूठ बोल रहा था। उसने कांच को चकनाचूर किया नहीं था, कांच चकनाचूर सिर्फ हो गया था। लेकिन कौन उसे इनकार करे, और कौन उसका विरोध करे। और अहंकार की अंधी आंखें किसी का इनकार सुनती हैं, किसी का विरोध सुनती हैं? अहंकार की अंधी आंखों को जब विरोध मिलता है, तो अहंकार और सख्त और घनीभूत और कंडेंस्ड हो जाता है, और मजबूत हो जाता है विरोध के लिए, और तैयार हो जाता है।
पत्थर जाकर महल के बिछे हुए ईरानी कालीन पर गिरा। उसने ठंडी श्वास ली राहत की और उसने कहा कि बड़े भले लोग हैं इस मकान के, मालूम होता है बहुत सुशिक्षित, सुसंस्कृत, ज्ञात होता है मेरे आने की खबर पहले ही पहुंच गई, उन्होंने कालीन वगैरह बिछा रखे हैं। फिर हो भी क्यों न स्वागत, मैं कोई साधारण पत्थर नहीं हूं, मैं आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। महल के मालिकों को सपने में भी पता न होगा कि किसी पत्थर का आयोजन कर रहे हैं वे, ये कालीन किसी आने वाले पत्थर के लिए बिछाए गए हैं, इसकी उनको कोई खबर न थी, पत्थर भी उस महल में अतिथि बनेगा, इसका उन्हें कोई पता नहीं था। वैसे अतिथि का मतलब ही यही होता है जिसके आने की कोई खबर न हो, जिसकी तिथि की कोई खबर न हो। लेकिन पत्थर ने मन में सोचा कि मैं आया हूं मेरे स्वागत के लिए सब इंतजाम किया गया है। वह फूल कर दुगुना हो गया।
झोपड़े से आदमी महल में जाता है तो दुगुना हो जाता है। गांव से आदमी दिल्ली पहुंच जाता है तो दुगुना हो जाता है। वह पत्थर भी दुगुना हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं है।

फिर महल के पहरेदार ने खबर सुनी होगी पत्थर के आने की और कांच के फूट जाने की, वह भागा हुआ आया और उसने पत्थर को उठाया फेंकने के लिए, लेकिन पत्थर ने अपने ही मन में कहा, धन्यवाद! बहुत धन्यवाद! मालूम होता है महल का मालिक हाथ में लेकर सम्मान दे रहा है। और पत्थर को वापस फेंक दिया गया। लौटते हुए पत्थर ने कहा कि होंगे तुम्हारे महल कितने ही अच्छे, लेकिन मुझे मेरे मित्रों की और घर की बहुत याद आती है, होम सिकनेस मालूम होती है। मैं वापस जा रहा हूं।
दिल्ली से कोई भी लौटता है तो यही कहते हुए लौटता है, होम सिकनेस मालूम हो रही है। तो वापस जा रहा हूं। वह पत्थर भी ऐसा कहता हुआ वापस लौटा। वह नीचे जब अपने पत्थरों में गिरने लगा तो पत्थर टकटकी लगाए उसे देख रहे थे, उसने आते ही कहा कि मित्रो, मैंने दूर-दूर की यात्राएं की, बड़े महलों में मेहमान हुआ। लेकिन महल होंगे कितने ही अच्छे, परदेस परदेस है। देश देश है, मातृभूमि की बात ही कुछ और है। मन में तुम्हारी याद आती थी। सोता था महलों में, सपने तुम्हारे देखता था। वापस लौट आया हूं।
इस पत्थर पर हमें हंसी आ सकती है। लेकिन जिस आदमी को पत्थर पर हंसी आती है उस आदमी को अगर अपने स्वयं के अहंकार पर भी हंसी आ जाए, तो उसकी जिंदगी में आत्म-बोध की पहली किरण का जन्म हो जाता है।
क्या हमारे जीवन की कथा भी इस पत्थर की यात्रा से बहुत भिन्न है? कहते हैं, मेरा जन्म! जैसे कि जन्म के पहले मुझसे पूछा गया हो कि आपके इरादे क्या हैं? आप कहां पैदा होना चाहते हैं? होना चाहते हैं कि नहीं होना चाहते हैं? जैसे जन्म मेरी च्वाइस हो, जैसे जन्म मेरा निर्णय और चुनाव हो। कहता हूं, मेरा जन्म! मेरा जन्म-दिन! जन्म के बाद मेरा मैं पैदा होता है तो कोई जन्म मेरा जन्म-दिन नहीं हो सकता। जन्म के बाद मेरा मैं सघन होता है, मेरा मैं जन्म के बाद है जन्म के पहले नहीं, तो कोई जन्म-दिन मेरा जन्म-दिन नहीं हो सकता। जन्म-दिन मुझसे पहले है, मैं पीछे हूं। और मुझसे कभी पूछा नहीं किसी ने कि जन्म लेना चाहते हैं कि नहीं लेना चाहते हैं? वह मेरा निर्णय नहीं, वह मेरा चुनाव नहीं। तो जो मेरा निर्णय नहीं, मेरा चुनाव नहीं वह मेरा कैसे हो सकता है? वह मेरा कृत्य नहीं, वह मेरा एक्ट नहीं। मैं फेंका गया हूं, किन्हीं अज्ञात हाथों ने उठा कर फेंक दिया है पत्थर को और पत्थर कह रहा है कि मैं जा रहा हूं। कोई अज्ञात हाथ फेंकते हैं मनुष्य को जीवन में और मनुष्य कहता है मेरा जन्म! और भूल शुरू हो जाती है, गलत यात्रा शुरू हो जाती है, पागलपन का रास्ता पकड़ लिया जाता है।
फिर हम कहते हैंः मेरा बचपन! मेरी जवानी! बीज को बो देते हैं हम जमीन में तो अंकुर निकल आता है। बीज अंकुर होता नहीं, अंकुर निकलता है। बीज का कोई भी कृत्य नहीं है। यह इतना ही सहज है जैसे पानी बहता है और नीचे की तरफ बह जाता है। नदियां सागर जाती नहीं, पहुंच जाती हैं; यह उतना ही सहज है कि नदियां सागर पहुंच जाती हैं। शायद नदियां सागर में जाकर कहती हों कि हम आ रहे हैं, हम यात्रा करके आ रहे हैं। नदियां सागर में पहुंचती हैं सहज। बीज में अकुंर निकलता है सहज, बच्चा जवान हो जाता है सहज। कोई जवानी लाई नहीं जाती है और न कोई जवान होता है। होना नहीं है वहां कुछ, चीजें घट रही हैं। लेकिन हमारा मैं जोड़ता चला जाता है कि मैं, मेरा बचपन, मेरी जवानी। दूर हैं ये बातें; तो हम तो यह भी कहते हैं कि मैं श्वास लेता हूं। अगर कोई आदमी श्वास लेता होता, तो मौत असंभव थी; मौत आ जाती है और वह श्वास लिए ही चला जाता है। हम भलीभांति जानते हैं श्वास आती है, जाती है, हम लेते नहीं हैं। मैं श्वास लेता हूं, यह झूठी बात है; श्वास आती है, जाती है, मेरा कोई भी कृत्य नहीं है लेने और न लेने में। एक दिन नहीं आएगी फिर मैं नहीं ले सकूंगा। नहीं आएगी तो ले सकने का सवाल नहीं है। नहीं आएगी तो फिर मुझे पता ही नहीं चलेगा कि मैं हूं। उसके न आने के साथ ही मैं भी न हो जाऊंगा। लेकिन कहते हम यही हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। और ऐसे अहंकार को हम घनीभूत करते हैं, अहं-बोध को घनीभूत करते हैं। फिर और वस्त्र जुटाते हैं उसके लिए नामों के, पदों के, प्रतिष्ठाओं के। बड़ी से बड़ी कुर्सियों की यात्रा करते हैं। और सारे जीवन की दौड़ के बाद कहीं भी नहीं पहुंच पाते सिवाए इसके कि एक फ्रस्ट्रेशन, एक चिंता, एक विषाद, एक विफलता चित्त को घेर लेती है।

क्योंकि जो हम भवन बनाते हैं, वह झूठा था। मौत उस सारे भवन के असत्य को खोल देती है और ज्ञात होता है हमने जीवन के भवन में प्रवेश ही नहीं किया। हम जिस भवन को बनाते रहे वह ताश के पत्तों का घर था।
जीवन का भवन आत्म-बोध से उपलब्ध होता है, अहं-बोध से नहीं। और अहं-बोध
को ही हम आत्म-बोध समझ लेते हैं तो भूल में पड़ जाते हैं। और यह भूल अंततः विफलता और विषाद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ला सकती। मनुष्य रोज-रोज चिंतातुर होता चला जाता है, मनुष्य रोज-रोज जीवन की व्यर्थता से भरता चला जाता है। मनुष्य जितना सुशिक्षित जितना सुसंस्कृत, जितना सभ्य होता चला जाता है उतना ही उसका जीवन व्यर्थ, उतना ही उसका जीवन दुख और पीड़ा होता जाता है।
क्या कारण हो गया है? शायद हमारी सारी सभ्यता, सारी शिक्षा, सारी संस्कृति हमारे अहंकार को और मजबूत कर रही है। शायद हमारी संस्कृति और शिक्षा के सारे पंख हमारे अहंकार के पत्थर को ही लग रहे हैं। शायद इसीलिए सब अर्थहीन होता चला जाता है। अर्थवत्ता उपलब्ध होती है उसे जानने से जो मैं हूं और अर्थहीनता उपलब्ध होती है उसे निर्मित कर लेने से जो मैं नहीं हूं। लेकिन हम उसी को निर्मित कर लेते हैं जो मैं नहीं हूं। यह यात्रा हम कैसे पूरी करते हैं। अहंकार को बढ़ाना हो तो आत्मा को विस्मरण करना होता है। जितनी सेल्फ-फॉरगेटफुलनेस हो, जितना आत्म-विस्मरण हो, उतना अहंकार मजबूत होता है। इसलिए सब तरह के नशे आदमी को अहंकार को बढ़ाने में सहयोगी होते हैं और आत्म-बोध को नष्ट करते हैं। वे नशे किसी भी तरह के होंः कोई आदमी शराब पी लेता हो, कोई आदमी संगीत में डूब कर अपने को भूल जाता हो, कोई आदमी पद की दौड़ में बेहोश और मूर्च्छित हो जाता हो, कोई आदमी धन को इकट्ठा करने में पागल हो जाता हो या कोई आदमी और किसी तरह की दौड़ को पकड़ लेता हो और दौड़ में अपने को डुबा लेता हो। सब तरह का आत्म-विस्मरण मनुष्य की अस्मिता को, अहंकार को मजबूत करता है। क्योंकि जितना हम भूलते हैं उसे जो हम हैं उतनी ही आसानी से उसका निर्माण शुरू हो जाता है जो हम नहीं हैं। अगर हमें याद बनी रहे थोड़ी सी भी उसकी जो हम हैं, तो हमारे हाथ ढीले हो जाएंगे उसको बनाने में जो हम नहीं हैं। प्रतिपल हमें दिखाई पड़ने लगेगा कि हम एक सपना बना रहे हैं, हम ताश का घर बना रहे हैं, हम रेत पर हस्ताक्षर कर रहे हैं। लेकिन अगर हम भूल जाएं बिल्कुल पूरी तरह से हमारे होने को, हमारी बीइंग को, तो फिर यह यात्रा बहुत आसान हो जाती है, यह सृजन बहुत आसान हो जाता है। मनुष्य जितना सभ्य होता है उतना ही मूर्च्छा के उपाय खोजता है। मनुष्य की सभ्यता का विकास शायद मादकता को गहरा करने का विकास है। मनुष्य की सभ्यता ने क्या किया है? उसे नये मनोरंजन दिए हैं, नये ड्रग्स दिए हैं, एल एस डी दिया है, मेस्कलीन दिया है, मारिजुआना दिया है। सोमरस से लेकर मारिजुआना तक आदमी की सभ्यता की यात्रा आत्म-विस्मरण की यात्रा है। और आदमी पागल होता चला जा रहा है। और पागल आदमी नशा चाहता है, और नशे में जो जाता है वह और पागल होता है, वह और पागल होता है, वह और नशा चाहता है। अपने को भूल जाना चाहता है, डुबा देना चाहता है। फिर वह हजार तरकीबें खोजता है अपने को भुला देने और डुबा देने की। और इन्हीं सबको वह संस्कृति कहता है। ठीक इससे उलटी दिशा है आत्म-बोध की; जिसे आत्म-बोध की दिशा में जाना हो उसे अहंकार को विस्मरण करना होगा। और जिसे अहंकार की दिशा में जाना हो उसे स्वयं को विस्मरण करना होगा। अहंकार की दिशा में जाना हो तो मूर्च्छा बहुत सहयोगी है, नशा बहुत सहयोगी है, मादकता बहुत सहयोगी है। भूल जाना बहुत सहयोगी है। कैसे हम भूलते हैं यह बात दूसरी है। भजन-कीर्तन करके भूलते हैं, कि गांजा-अफीम से भूलते हैं, कि संगीत से भूलते हैं, यह बात दूसरी है।
वाजिद अली के समय में एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ लखनऊ में आया, वह एक बहुत बड़ा वीणावादक था। और उस वीणावादक ने कहा कि मैं एक ही शर्त पर बजाऊंगा वीणा। कि जब मैं बजाऊं तो कोई सिर हिलना नहीं चाहिए। अब कलाकारों के अपने पागलपन होते हैं। और वाजिद अली तो पक्का पागल था। नवाबों के अपने पागलपन होते हैं। वाजिद अली ने कहा कि तुम घबड़ाओ मत, सिर हिलने की बात कहते हो! अगर कोई सिर हिला तो सिर अलग ही करवा देंगे। गांव में डुंडी पीट दी गई और खबर

कर दी गई कि कोई सुनने आए तो समझ-सोच कर आए, सिर नहीं हिलाना है। और अगर सिर हिलेगा तो सिर कटवा दिया जाएगा। फिर जिम्मा नहीं है।
हजारों लोग सुनने आते उस संगीतज्ञ को, लेकिन मुश्किल से पचास-साठ आदमी सुनने आए। जो बहुत संयमी होंगे, वही आए होंगे। जो योगासन लगा कर बैठ सकते होंगे, वही आए होंगे। फिर संगीत शुरू हुआ, उसकी वीणा बजनी शुरू हुई। आधी रात तक लोग पत्थर की मूर्तियों की तरह बैठे रहे, जैसे कि उनमें प्राण भी न हों। श्वास भी लेने में डरे होंगे कि कहीं भूल से भी सिर हिल जाए, तो वह वाजिद अली तो पागल था, वह सिर कटवा ही देगा। नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक उसने खड़े कर रखे थे कि कोई भाग न जाए सिर हिला कर।
आधी रात के बाद लेकिन कुछ सिर हिलने शुरू हो गए। एक हिला, दो हिले और तीन हिले और धीरे-धीरे उस पचास-साठ की भीड़ में आधे सिर हिलने लगे। वाजिद अली बहुत हैरान हुआ कि ये पागल हो गए हैं, इनको भूल गई ख्याल! सुबह जब वीणा बंद हुई, तीस आदमी पकड़ लिए गए। और वाजिद अली ने कहाः पागलो, तुम भूल गए कि सिर कट जाएंगे? उन्होंने कहाः जब तक हम थे तब तक नहीं भूले थे। लेकिन जब हम ही न रहे तो भूलने न भूलने का कोई सवाल न रहा। जब तक हम थे हमने सिर नहीं हिलाए, लेकिन जब हम ही न रहे तो सिर हिल गए होंगे उसका हमें कोई पता नहीं, उसका हमारा कोई जिम्मा नहीं। उसका हमारा कोई उत्तरदायित्व नहीं।
वाजिद अली ने उस संगीतज्ञ को कहाः इनके सिर कटवा दें? उस संगीतज्ञ ने कहा कि नहीं, बस कल इन तीस को बुला लें, इन तीस के सामने वीणा बजाऊंगा। क्योंकि ये ही ठीक सुनने वाले हैं।
क्या संगीत इतनी मूर्च्छा में ले जा सकता है कि प्राणों का भय भी विलीन हो जाए? ले जा सकता है। क्या पद का मोह इतने पागलपन में ले जा सकता है कि प्राण का मोह विलीन हो जाए? ले जा सकता है। क्या धन-संग्रह की मादकता इतनी तीव्र हो सकती है कि आदमी अपने प्राणों को गंवा दे? हो सकती है। और जितनी दिशाओं में आदमी दौड़ता है, वे वे ही दिशाएं हैं जहां वह किसी भांति स्वयं को भूल जाए। जितनी देर को वह स्वयं को भूले रहता है उतनी देर ही उसे लगता है कि कोई सुख मिल रहा है। जैसे ही उसे ख्याल आता है अपना, थोड़ी सी भी झलक आती है अपनी, सारा झूठ का महल उसे दिखाई पड़ता है कि मैं कहां खड़ा हूं। वैसे ही प्राण घबड़ाने लगते हैं, वैसे ही एंग्विश, संताप शुरू हो जाता है। फिर वह कोशिश करता है अपने को भूल जाऊं। अधार्मिक आदमी उसे मैं कहता हूं, उसे नहीं जो मस्जिद नहीं जाता, मंदिर नहीं जाता। उसे नहीं जो गीता नहीं पढ़ता, रामायण नहीं पढ़ता। उसे नहीं जो तिलक नहीं लगाता। अधार्मिक आदमी उसे कहता हूं, जो निरंतर अपने को भूलने की कोशिश करता रहता है। और धार्मिक आदमी उसे कहता हूं, चाहे कितनी ही तपश्चर्यापूर्ण हो यह बात, कितनी ही आरडुअस, कितनी ही कठिन प्रतीत होती हो लेकिन अपने को जानने की, होश से भरने की, सेल्फ-रिमेंबरिंग की, आत्म-स्मृति की कोशिश करता रहता है, वह आदमी धार्मिक है।
और धार्मिक होने के लिए उसे अधार्मिक से विपरीत दिशा में चलना होता है। अधार्मिक भूलता है आत्म को, धार्मिक भूलना शुरू करता है अहंकार को। और धार्मिक को अहंकार को भूलने की जरूरत नहीं है, वह केवल अहंकार को समझ ले और अहंकार विलीन हो जाता है। आत्मा को भूलना पड़ता है, क्योंकि आत्मा है। अहंकार को भूलना नहीं पड़ता, वह है ही नहीं; केवल देखना पड़ता है और वह विसर्जित हो जाता है। केवल आंखें गहरी करनी पड़ती हैं, खोज करनी पड़ती है कि कहां है मेरा अहंकार? मैं क्या कर रहा हूं, मैं अपने को भूलने की कोशिश तो नहीं कर रहा हूं? क्योंकि मैं कितना ही अपने को भूलूं, फिर भी मैं वही रहूंगा जो मैं हूं। मैं लाखों वर्ष कोशिश करूं अपने भूलने की, तो भी मैं वही रहूंगा जो मैं हूं। स्वयं से बचने का कोई भी उपाय नहीं है। हम सबसे बच सकते हैं, लेकिन स्वयं से नहीं बच सकते हैं। आज नहीं कल, वह स्वयं की सत्ता का साक्षात करना ही होगा। क्योंकि जो मैं हूं उससे मैं कैसे बच सकता हूं? मैं जहां भी भाग जाऊं, जहां भी छिप जाऊं मैं हमेशा अपने साथ मौजूद हो जाऊंगा। मैं नशे में डूब जाऊं तो भी मैं मौजूद रहूंगा। नशा टूटेगा और मैं वापस अपनी जगह खड़ा हो जाऊंगा।

स्वयं से बचने का कोई उपाय नहीं है। मैं कहता हूंः परमात्मा से बचने
का कोई उपाय नहीं है। आदमी सबसे बच सकता है लेकिन परमात्मा से नहीं बच सकता। क्योंकि वह उसका होना है, वह उसकी स्वयं की सत्ता है। आज नहीं कल उसे उसके सामने खड़ा हो ही जाना है। वह भागे और भागे और ओर-छोर नाप डाले जगत के, वह भाग कर जाएगा कहां? वह अपने से तो नहीं भाग सकता, वह अपने होने से तो नहीं भाग सकता, उसके सामने खड़ा ही हो जाना पड़ेगा। तो जो बात होनी ही है, धार्मिक आदमी उसके लिए आज ही करने का साहस कर लेता है। धर्म एक दुस्साहस है आत्म-साक्षात्कार का। और वह कैसे आत्म-साक्षात्कार हो सकता है? हो सकता है कि अहंकार को वह देखे और अहंकार विसर्जित हो जाए। तो अहंकार के हटते ही, अहंकार के गिरते ही उसकी ज्योति आनी शुरू हो जाती है जो हम हैं। जैसे ही अहंकार का पर्दा हटता है उसकी रोशनी मिलनी शुरू हो जाती है जो मेरा वास्तविक होना है।
आत्म-बोध की दिशा अहंकार विसर्जन की साधना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। केवल वे ही लोग स्वयं को जान पाते हैं जो स्वयं के होने के झूठे और कल्पित भवन को गिरा देते हैं। सपना खोना पड़ता है सत्य को पाने के लिए और कुछ भी नहीं खोना पड़ता है। सत्य को पाने के लिए सपनों के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं त्यागनी पड़ती है। सपने ही लेकिन बहुत गहरे हैं और बहुत जोर से पकड़े हुए हैं। रात ही हम सपने देखते होते तो क्षम्य था, हम चौबीस घंटे और जन्म से मरने तक सपने देखते हैं। और सारे सपनों का केंद्र हमारा ईगो, हमारा अहंकार है। जब तक अहंकार न टूट जाए तब तक ड्रीमिंग माइंड भी, सपने देखने वाला मन भी समाप्त नहीं होता है। और जैसे ही अहंकार टूट जाता है वैसे ही स्वप्न विलीन हो जाते हैं और जो शेष रह जाता है वही सत्य है। आत्म-बोध के लिए कुछ करना नहीं है, कुछ हम कर रहे हैं उसे भर न करें, तो आत्म-बोध सहज ही उपलब्ध हो जाता है, वह हमारा होना है, उसे कहीं से लाना नहीं है।
एक आदमी एक रात शराब पी लिया और अपने घर पहुंच गया। शराब पी ली आदत के कारण। अपने घर तो पहुंच गया, लेकिन उसे पहचान नहीं पड़ता था कि यह उसका घर है या नहीं। वह जोर से दरवाजे पीटने लगा। और पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए और उससे पूछने लगे कि क्या बात है? वह आदमी कहने लगा कि मैं अपना घर भूल गया हूं, मुझे मेरे घर पहुंचा दें। वे सारे पड़ोसी हंसने लगे, उन्होंने कहा, पागल, तू अपने घर के सामने खड़ा है। लेकिन वह आदमी सुनने की स्थिति में नहीं था, वह छाती पीटने लगा और कहने लगा कि रात ज्यादा हुई जा रही है, मुझे कोई मेरे घर पहुंचा दो। तुम हंसते हो, तुम इतनी भी दया नहीं करते कि मुझे मेरे घर पहुंचा दो।
उसके रोने और चिल्लाने को, पड़ोसियों के समझाने को सुन कर उसकी मां बाहर निकल आई। उसने अपनी मां को देखा, वह उसके पैर पकड़ लिया और कहने लगा कि माई, मुझे मेरे घर पहुंचा दे, मेरी मां मेरा रास्ता देख रही होगी। उसकी मां कहने लगी, पागल, तुझे हो क्या गया है? तू अपने घर खड़ा है और अपनी मां के सामने। लेकिन वह कहने लगा, मुझे समझाने की फिजूल कोशिश मत करो। और रात देर हुई जाती है, मेरी मां रास्ता देखती होगी और घर मुझे जल्दी पहुंच जाना है। एक आदमी पड़ोस का बहुत दयालु होगा, वह जोत कर अपनी बैलगाड़ी ले आया और उसने कहा, चल बैठ, मैं तुझे तेरे घर पहुंचाता हूं। उसकी मां कहने लगी कि पागल, यह तो पागल है और तू भी पागल है। बैलगाड़ी में बिठा कर कहीं भी ले जाएगा तो घर से और दूर निकल जाएगा, क्योंकि घर तो यह मौजूद है। इसे बैलगाड़ी में बिठा कर कहीं नहीं ले जाना है, इसे केवल होश दिलाना है। इसकी बेहोशी टूट जाए तो इसे पता चल जाएगा कि यह जहां है वहीं इसका घर है।
मनुष्य को आत्म-बोध नहीं है। एक आदमी कहता है कि आओ, मैं तुम्हें तंत्र-मंत्र की बैलगाड़ी में बिठाता हूं और आत्मा तक पहुंचा दूंगा। एक आदमी कहता है कि आओ, मैं तुम्हें शास्त्र की रेलगाड़ी में बिठा देता हूं और तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा। एक आदमी कहता है कि मुझे गुरु बना लो, मेरे चरणों को पकड़ो और मैं तुम्हें तैरा दूंगा, तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है, मैं तुम्हें पहुंचा दूंगा। पच्चीस दुकानदार हैं, जो कहते हैं कि आदमी को किस भांति आत्म-बोध करा देंगे। लेकिन आत्म-बोध कोई ऐसी चीज नहीं है कि जहां हमें जाना है। आत्म-बोध तो वहीं उपलब्ध होना है जहां हम हैं। जो

मैं हूं उसके लिए कोई यात्रा नहीं करनी है। फिर क्या करना है? हम कोई यात्रा कर रहे हैं, सपने में वह यात्रा तोड़ देनी है।
एक आदमी रात सोया है और सपना देख रहा है कि कलकत्ते में है, रंगून में
है या टोक्यो में है। वह पड़ा है बंबई में और सपना देख रहा है कि टोक्यो में है और रंगून में है। क्या उसको जगा कर हमें वापस बंबई लाना पड़ेगा रंगून से? क्या जगा कर कहना पड़ेगा कि अब चलो रंगून से वापस बंबई चलें। वह जागते ही बंबई में होगा। क्योंकि वह रंगून में कभी गया नहीं था। वह बंबई में था सिर्फ सपना देखता था रंगून में होने का। इसलिए हिला देना काफी है, जगा देना काफी है। कहीं किसी को ले जाना नहीं है। आत्मा की या परमात्मा की यात्रा कोई दूर की यात्रा नहीं है, वहां किसी को जाना नहीं है, वहां हम हैं। जहां हम हैं, हमारे उस होने का नाम ही हमारी आत्मा है। जहां हम हैं, हमारे उस होने का नाम ही परमात्मा है। जहां हम हैं, वही हमारा घर है। लेकिन जागना है। और अहंकार में जो सोया है वह कैसे जाग सकता है। इसलिए एक ही अंतिम बात आपसे कहनी है, वह यह कि आत्म-बोध की फिकर छोड़ दें। फिकर करें अहंकार-बोध की कि इस अहंकार को ठीक से जानें, समझें, पहचानें, और अगर यह दिखाई पड़ने लगे कि झूठा है, सपना है, तो यह मिट जाएगा। यह यात्रा टूट जाएगी। यह भवन गिर जाएगा। और तब जो शेष रह जाएगा, तब जो स्मृति जाग उठेगी, तब जो बोध जन्म जाएगा, तब जो प्रकाश भर जाएगा प्राणों में, जो आलोक पकड़ लेगा, वही आत्मबोध है। आत्मबोध तो स्वभाव है। लेकिन अहंकार की यात्रा के कारण वह छिपा है, और छिपा रहेगा। अहंकार जिनका टूट जाता है वे धन्यभागी हैं, वे आत्मबोध को उपलब्ध हो जाते हैं।
एक ही बात दोहरा कर अपनी बात पूरी करता हूंः अहंकार को खोजें। अहंकार
को खोजें, कहां है? नाम में है, पद में है, धन में है, ज्ञान में है, त्याग में है, कहां है? उसे खोजें और जहां-जहां खोजेंगे पाएंगे कि वहीं से वह हवा हो गया, भाग गया। जब पूरे चित्त को खोज लेंगे अपने और उसे कहीं भी नहीं पाएंगे; तब जो मिल जाएगा वह आत्मा है।
एक भिक्षु भारत से कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया, बोधिधर्म। वहां का सम्राट वू उसके स्वागत को आया राज्य की सीमा पर। और स्वागत करने के बाद उसने बोधिधर्म को कहा कि मैं अहंकार से बहुत पीड़ित हूं और सभी संन्यासी कहते हैं अहंकार छोड़ो, अहंकार छोड़ो। मैंने बहुत कोशिश कर ली छोड़ने की, लेकिन अहंकार नहीं छूटता, अब मैं क्या करूं? मेरी मौत करीब आ रही है, क्या मेरे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है? उस बोधिधर्म ने कहाः कि तू सुबह चार बजे आ जाना, अंधेरे में, अकेले में, मैं तेरे अहंकार को छुड़ा दूंगा। अब तू जा। वह सम्राट बहुत हैरान हुआ। वह बहुत संन्यासियों के पास गया था, बहुत भिक्षुओं के पास गया था। लोग समझाते थे, लेकिन कोई यह नहीं कहता था कि मैं छुड़ा दूंगा। यह आदमी कैसा है! लेकिन शायद छुड़ा दे। वह सीढ़ियां मंदिर की उतरने लगा, तभी बोधिधर्म ने चिल्ला कर कहा कि सुन, अकेला मत आ जाना, अहंकार को साथ ले आना, नहीं तो मैं छुड़ाऊंगा कैसे?
सम्राट वू को लगा कि यह आदमी पागल है। आने की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि मैं आऊंगा तो मेरा अहंकार तो आ ही जाएगा। यह क्या कहने की जरूरत थी कि अहंकार को साथ ले आना? लेकिन सोचा कि क्या हर्ज है, चल कर देख लेना चाहिए, पता नहीं कुछ आदमी करे, कुछ जानता हो।
वह चार बजे रात डरता-डरता आया, अंधेरी रात, वह आकर बोधिधर्म के झोपड़े
के बाहर बैठा। बोधिधर्म लालटेन और डंडा लेकर बाहर आया और उसने कहाः आ गए तुम? लेकिन अकेले दिखाई पड़ते हो, अहंकार कहां है? उस वू ने कहा कि आप भी पागलों जैसी बातें करते हैं। अहंकार तो मेरे भीतर है, उसे मैं छोड़ कर कैसे आ सकता हूं? वह तो साथ है ही। अगर उसको मैं छोड़ सकता, तो तुमसे छोड़ने का उपाय क्यों पूछता? मैं उसे नहीं छोड़ पा रहा हूं, यही तो मेरी समस्या है। तुम कोई रास्ता बता दो, मैं उसे कैसे छोड़ूं?
बोधिधर्म ने कहाः तू कहता है, भीतर है, पक्का तुझे विश्वास है कि भीतर है? तो आंख बंद करके भीतर खोज। मैं सामने बैठा हूं, मिल जाए तो वहीं पकड़ लेना और मुझे कहना, तो मैं उसको खत्म कर दूंगा।

अब वह बोधिधर्म सामने बैठ गया और वह सम्राट वू आंख बंद करके भीतर खोजने लगा।... और वह बोधिधर्म उसे हिलाने लगा कि सो मत जाना, खोज जारी रख और भीतर खोज ले। और जब भी तू पा ले कि पकड़ लिया, उसी वक्त मैं खतम कर दूंगा। आधा घड़ी बीत गई, एक घंटा बीत गया, डेढ़ घंटा बीत गया, सुबह होने लगी, सूरज निकलने लगा। उस सम्राट वू के आंख पर, चेहरे पर एक अदभुत शांति आने लगी। उसके चेहरे के सारे तनाव विलीन होने लगे। एक आनंद की छाया उतरने लगी। फिर सूरज निकल आया, फिर उसकी रोशनी में वह सम्राट वू बैठा है आनंद से भरा हुआ। उस बोधिधर्म ने उसे कहा कि बोल। उसने आंख खोली और बोधिधर्म के पैर पड़े और कहाः मैं जाता हूं, क्योंकि जो नहीं है उसे मिटाना भी पागलपन है। मैंने उसे देखा ही नहीं, इसलिए सोचता था कि वह है। आज भीतर खोजा, तो पाता हूं, वह तो कहीं भी नहीं है। वू पैर पड़ कर चला गया था।
खोजें अहंकार को, जीवन में वह कहां-कहां खड़ा कर लिया है? कहां-कहां है? और जिस दिन दिखाई पड़ जाएगा कि वह नहीं है, उसी दिन, उसी दिन वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा जो है। और उसकी उपलब्धि बन जाती है आनंद, उसकी उपलब्धि बन जाती है आलोक, उसकी उपलब्धि बन जाती है अमृत। शेष सारे लोग जीते हैं, दिखाई पड़ते हैं जीते हुए, लेकिन जीवन को नहीं जानते। केवल वे ही लोग जीवन को जान पाते हैं जो स्वयं की परिपूर्ण गहराई को उपलब्ध होते हैं, जो आत्म-बोध को उपलब्ध होते हैं, वे ही केवल अमृत-जीवन को भी जाने पाते हैं।

मेरी ये थोड़ी सी बातें इतने प्रेम और इतनी शांति से सुनीं, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।